॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

श्री १०८ स्वामिहंसस्वरूपविरचितः ।

सन्त्रप्रभाकरः ।

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्यो-
जाताय वै नमो नमः । भवे भवे नाति-
भवे भवस्व माम । भवोद्भवाय नमः ॥

तै० आ० प्र० १० अ० १७ ।

अज्ञानांशुप्रतानैः स्थिरचरनिकरव्यापिभि-
र्व्याप्यलोकान् भुक्त्वाभोगान् स्थविष्ठान् पुनर-
पिधिषणोद्भावितान्कामजन्यान् ॥ पीत्वा सर्वान्
विशेषान् स्वपिति मधुरभुङ्मायया भोजयन्
नो मायासंख्यातुरीयं परममृत मजं ब्रह्म यत्तन्न-
तोऽस्मि ॥

ॐ (ओ३म्) ॐ

यह प्रणव "ॐकार" सब मंत्रोंके आदिमें आता है, इसकारण प्रथम इसका अर्थ व्याख्या सहित कियाजाताहै ।

श्रीगणेशायनमः । विदित होवे कि जिसप्रकार प्राणरहित देह, दीपरहित गेह, कन्तरहित कामिनी, चन्द्रहित यामिनीकी शोभा नहींहोती, इसीप्रकार ॐकाररहित वेदमंत्रोंकी शोभा नहींहोती । 'ॐकारः सर्व्ववेदानां सारभूतः प्रकीर्तितः' औ 'प्रणवः सर्व्ववेदेषु (गीतायाम्)' इन वचनोंसे सिद्ध होताहै कि यह प्रणव ॐकार वेदमंत्रोंका प्राण है जिसके विना कोई मंत्र उच्चारण नहीं करनाचाहिये, यदि कियाजावे तो वह मंत्र प्राणरहित अर्थात् निर्जीव रहनेसे फलदायक नहींहोता । फिर 'ॐकारः स्वर्गद्वारमिति सूत्रम्' ॐकार स्वर्गका द्वार है यह सूत्रकारने कहाहै इसकारण मंत्रोंके आदिमें प्रयोग कियाजाताहै । फिर स्मृति का वचनहै कि 'ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कण्ठं भित्त्वा पुनर्जातौ तेन माङ्गलिकावुभौ ॥ अर्थात् ॐकार औ अथ ये दोनों शब्द वेदमंत्रोंसे पूर्वही ब्रह्माके कण्ठको भेधकर निकले

इसीकारण ये दोनों शब्द मांगलिक होनेसे वेदमंत्रों, श्रुतियों, स्मृतियों, सूत्रोंके आदिमें लगायेजातेहैं। अब इसका अर्थ कियाजाताहै ॥

(ॐ) प्रवेशार्थस्यावतेः प्रवेशार्थक अव धातुसे ओं बनाहै (ओमिति पुनः काऽस्यनिरुक्तिः) ओम् पदकी निरुक्ति क्याहै, कथन करतेहैं (अवति-र्नामायं धातुर्गतिकर्मा प्रवेशकर्माचेति) अर्थात् अव धातु गति औ प्रवेश दोनों अर्थमें आताहै तथा (अवति प्रविशति गुणानितिवा) (अव्यते प्रवि-श्यते गुणैरितिवा) अर्थात् जो गुणोंमें प्रवेशकरे अ-थवा जो गुणोंसे प्रवेश कियाजावे (उभयथाऽप्यनन्त-गुणपरिपूर्णत्वमोंकारार्थतयालभ्यते) अर्थात् दोनों अर्थोंसे यही सिद्ध होताहै कि जो अनन्त गुणोंसे परि-पूर्ण हो वही ॐकार है। और विदित है कि अनन्त गुणोंसे पूर्ण केवल परमात्माहै इसकारण ॐकार परमा-त्मीवाचक सिद्ध हुआ। यह निरुक्तिकारका अर्थहै। अब पाणिनीय व्याकरणसे अक्षरार्थ यह है कि (अव) (रक्षणे) धातु रक्षा अर्थमें आता है, उणादिके (धातो-रवतेष्टिलोपश्च) इस सूत्रसे (अव) धातुसे (मन्) प्रत्यय होकर (अन्) टी संज्ञाका लोप होजानेसे (अवम्) ऐसा शब्द हुआ फिर (ज्वरत्वरेति) इस

सूत्रसे (अव) को (ऊठ) आदेश होनेसे (ऊम्) ऐसा शब्द हुआ फिर (सार्वधातुकार्धधातुकयोः) इससे ऊम्के ऊकारको गुण होगया तब (ओम्) ऐसा पद सिद्ध हुआ, अर्थात् (अवति संसारसागरादिति) जो संसार सागरसे रक्षाकरे अर्थात् तारे वह ओंकार है। (तारयति तस्मादुच्यतेतारः) [श्रुतिः] और (नमस्ताराय) इन वचनोंसे ॐकार शब्दके पर्य्याय में तार शब्दका प्रयोग देखा भी जाताहै। इसलिये ॐकारवर्णात्मकएकाक्षरब्रह्म जीवोंको संसाररूप सागर से तारनेवाला है॥

फिर (अकार उकारो मकार इति तानेकधा समभरत्तदेतदोम्) इस श्रुतिके वचनसे अ, उ, म्, इन तीनों वर्णोंके मिलादेनेसे [ओम्] बना जिसका वर्णन आगे कियाजावेगा।

यद्यपि इस ॐकार (प्रणव) का गुप्तरहस्य औ निरूपण केवल गुरुही द्वारा जानाजाताहै, लेखमें नहीं आता, तथापि अधिकारियोंके किंचित् बोध निमित्त इसकी व्याख्या इस स्थानमें कीजाती है।

यह ॐकार नाद है जो तैलधारावत् निरन्तर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें अनादिकालसे होरहाहै, यदि किसी एकान्त स्थानमें जहां सुनसान मैदान होवे जाकर

चित्त एकाग्रकर वृत्तियोंको रोक शान्तिपूर्वक थोड़ी देरतक कानोंको एकओर लगा श्रवणकरैं तो यह ॐ-कार गंभीर नादके समान दशों दिशाओंमें व्याप्ताहुआ स्पष्टरूपसे सुनपड़ेगा, यहांतक कि सुनते २ सुननेवाला तुरीयावस्थित होजावेगा, इसीके श्रवणकरनेके निमित्त योगीजन नादानुसन्धान अर्थात् अनाहतध्वनि श्रवण करनेका अभ्यास करतेहैं, यह गुप्तरहस्य लाखोंमें किसी एक भाग्यवान प्राणीको लाभहोताहै। नादानुसन्धान* समाधिभाजां योगीश्वराणां हृदिवर्द्धमानम् । आनन्दमेकं वचसामगम्यं जानाति तं श्रीगुरुनाथ एकः॥ अर्थात् नादानुसन्धानका आनन्द जो यो-गियोंके हृदयमें प्राप्त है वह वचनसे नहीं कहाजाता केवल गुरुही महाराज जानतेहैं॥

फिर इसी ॐकारसे सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना होती है, किसप्रकार होतीहै वर्णन कियाजाताहै। सर्व विद्वानों पर विदित है कि नाद औ विन्दुके संयोगसे सकल सृष्टि निर्म्माण कीजातीहै। इसका तात्पर्य्य यह है कि नाद कहिये ॐकार औ विन्दु कहिये प्रकृति। प्रकृति को विन्दु इसकारण कहतेहैं कि आकाश, वायु, अग्नि,

---

* देखो श्रीस्वामिहंसस्वरूपकृत प्राणायामविधि जिसमें पृष्ट ६५ से ७२ तक नादानुसन्धान का वर्णनहै।

जल, पृथ्वी, ये पांचों तत्त्व जो प्रकृतिरूप हैं इनके दो स्वरूप हैं नित्य औ अनित्य, ये परमाणु रूपसे नित्यहैं औ पदार्थ रूपसे अनित्यहैं, अर्थात् ये पांचों तत्त्व जब स्वरूप करके नाश होतेहैं तव प्रलयकालमें इनका परमाणु रूप रहजाताहै जो विन्दु (.) रूपहै, अविनाशी है औ अनादिहै न्यायशास्त्रवेत्ता इसको भली भांति जानतेहैं, जैसे किसी काष्ठके बड़े मोटे खंब अर्थात् बल्लेमें आग लगादीजिये तो भस्म होजानेके पश्चात् अपने पूर्व स्थूल रूपको छोड़ छोटा २ परमाणु बन आकाशमें ऐसा फैल जावेगा कि मानों कुछ थाही नहीं, इसीप्रकार प्रलयकाल में यह स्थूल सृष्टि स्वरूप करके नाशहो परमाणुरूप रह-जाती है औ परमाणु विन्दुका रूपहै यह सिद्ध है, इस कारण यह प्रकृति (पंचमहाभूत) भी नित्यरूपसे विन्दु (.) का स्वरूप है ॥

अब नाद (ॐ) औ प्रकृति विन्दु [.] इन दोनों के संयोगसे सृष्टि कैसे बनजातीहै वर्णन कियाजाता है। एक पखावज वा मृदंग सीधा खड़ा करादियाजावे जिसका सुरवाला छाज नीचे पृथ्वीकी ओर और बम वाला छाज ऊपर आकाशकी ओर होवे फिर ऊपर बम-पर थोड़ी रेती जो परमाणु, विन्दु, वा प्रकृतिरूप है रखदीजावे और नीचे सुरपर अंगुलियोंसे भिन्न २ गत

जो नाद [ॐ] रूप है बजाना आरंभ करदियाजावे। अब देखतेरहिये कि जैसे २ भिन्न २ गतें बजतीजावेंगी ऊपर रेतीका स्वरूप टूट २ कर भिन्न २ आकारोंमें बनताजावेगा अर्थात् भिन्न २ नादोंसे रेतीके मध्य कभी त्रिकोण, कभी चौकोन, कभी लम्बी, कभी गोल लकीरें पड़जावेंगी, इसीप्रकार अनादिकालसे ॐकाररूप नादकी चोट प्रकृतिरूपी रेतीमें लगनेसे सूर्य्य, चन्द्र, पर्वत, सागर, वृक्ष, पशु, पक्षि, मनुष्य इत्यादि भिन्न २ रूप बनजातेहैं * इसीकारण माण्डूक्योपनिषद् की श्रुतिहै कि—

ॐ मित्येतदक्षरमिदंॅ सर्वं तस्यो-पव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्व-मोंकारएव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं त-दप्योंकार एव ॥

'ॐ मित्येतदक्षरमिदंॅ सर्वम्' अर्थात् इस सम्पूर्ण सृष्टिमें अधः, ऊर्ध्व, वाम, दक्षिण, दशों दिशाओं में आकाश, पृथ्वी, नदीनद, पशु, पक्षि, इत्यादि की जो कुछ रचनाहै सब ॐकारही है और 'तस्योपव्या-ख्यानम्' अर्थात् [एतद्वै सत्यकाम परश्चापरश्च ब्रह्म

* इसका भेद किसी महापुरुषद्वारा समझलेना।

यदोंकारः] इस श्रुतिके अनुसार पर औ अपररूप ब्रह्म जो एकाक्षर ॐकार उसीको ये सब स्पष्टरूपसे व्याख्यान कररहेहैं अर्थात् जनारहेहैं। क्योंकि [ॐ सर्वमेतद्ब्रह्म] इस वचनसे यह सब ब्रह्महै और (ॐ तस्य वाचकः प्रणवः) फिर [तदेव वाच्यं प्रणवोहि] इत्यादि प्रमाणोंसे उस ब्रह्मका वाचक प्रणव ॐकार है, इसकारण जोकुछ है वह सब ॐकाररूप एकाक्षर ब्रह्म है यह सिद्ध हुआ, क्योंकि बुद्धिमानोंपर प्रकटहै कि [वाच्यस्य वाचकाभेदात्] वाच्य औ वाचक अर्थात् नाम औ नामीमें भिन्नता नहीं होती दोनोंमें अभेद सम्बन्ध है, गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी इन श्रुतियों की छाया अपने दोहामें कथन कीहै कि—

गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दौं सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

अर्थात् गिरा (वाचक) औ अर्थ (वाच्य) में फिर जल और उसके वीचि अर्थात् तरङ्गमें जैसे भेद नहीं है, तैसे सीता जो (प्रकृति) औ राम (पुरुष) इनमें कथन मात्र भेद है यथार्थमें कुछ भेद नहीं। तैसेही ॐकार प्रणव और ब्रह्ममें जो गिरा औ अर्थके समान हैं कुछ भेद नहीं, क्योंकि वाचक (नाम) से जैसे वाच्य

(नामी) के सर्वगुण प्रगट होतेहैं तैसे ॐकार प्रणवसे ब्रह्मके सर्वगुण प्रगट होतेहैं। अब नामसे नामीके गुण कैसे प्रगट होतेहैं उदाहरण देकर इस स्थानमें वर्णन कियाजाता है। उदाहरण०—

किसी ग्राममें एक पुरुषका नाम 'महेश्वरसिंह' है तो महेश्वरसिंह इस (वाचक) पद से सुननेवाले को केवल इतनाही बोध होगा कि इसका (वाच्य) कोई साधारण पुरुष अमुक ग्रामवासी है, फिर यदि कहपड़े 'महेश्वरसिंह रायबहादुर' तो 'रायबहादुर' इतना पद अधिक जोड़देनेसे ज्ञातहुआ कि साधारण कोई पुरुष नहीं किन्तु दोचार सौ पुरुषों में श्रेष्ठ फिर उसमें थोड़ा और वाचक जोड़दिया अर्थात् 'महाराजा महेश्वरसिंह रायबहादुर' तो ज्ञातहुआ कि दोचार सौ रायबहादुरोंमें भी श्रेष्ठ जिसके अधिकारमें राज्य है फिर जोड़ा 'चक्रवर्ती महाराजा महेश्वरसिंह रायबहादुर' तो ज्ञातहुआ कि दोचार सौ महाराजों में भी श्रेष्ठ। अर्थात् जैसे २ (वाचक) नाम की अधिकता होतीगई, (वाच्य) नामी का गुण अधिक बढ़तागया अब बुद्धिमान विचारलेवें कि, (महेश्वरसिंह, १+रायबहादुर २+ महाराजा ३+चक्रवर्ती ४) में वाचकके चारों खंडों से वाच्यका महत्त्व अधिकसे अधिक प्रगट होता

गया, इसीप्रकार ॐकार प्रणवके भिन्न २ चारों खंडों से ब्रह्मका अधिक से अधिक महत्त्व प्रगटहोता है उस ॐकारके चारखंड ये हैं, अ १×ऊ २+म ३+ (ँ अमात्रा ४)।

अब ऊक्त चारों खंडोंसे क्या २ महत्त्व प्रगट होतेहैं ध्यान देकर नीचे देखिये ॥

अकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसं, मकारश्च पुनः प्राज्ञं, नामात्रे विद्यते गतिः ।

'अकारोनयतेविश्वम्' (अ) जो ॐकारका प्रथम खंड है वह विश्व (जाग्रत अवस्था) को जनाताहै अर्थात् ॐकार रूप नादके (अ) इतने शब्दकी चोट प्रकृतिमें लगनेसे जाग्रतअवस्थाकी सारी रचनायें बन जातीहैं औ 'उकारश्चापितैजसम्' तैजस कहिये स्वप्नको अर्थात् (उकार) दूसरे खंडकी चोटसे स्वप्नावस्थाकी सारी रचनायें बनजातीहैं, फिर 'मकारश्चपुनः प्राज्ञम्' प्राज्ञ कहिये सुषुप्तिको अर्थात् (मकार) इतने तीसरेखंडकी चोटसे सुषुप्ति अवस्थाकी सारी रचनायें बनजातीहैं फिर 'नामात्रे विद्यतेगतिः' अर्थात् अमात्रा जो यह चौथाखंड (ँ) इसमें गतिविद्यमान नहीं है अर्थात् अ+

ऊ+म् तीनखंडोंसे तो उस परब्रह्मकी तीन मुख्य शक्तियां जिनसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इनतीनों अवस्थाकी रचनायें बनती हैं प्रगटहुई किन्तु चौथा खंड जो [॰] अमात्रा इसमें गति विद्यमान नहीं है अर्थात् तुरीय चौथी अवस्था है जिसमें ब्रह्मकी अनन्त कोटि शक्तियां प्रवेश कियेहुईहैं जिनमें किसी भी बुद्धिमान की बुद्धि प्रवेश नहीं करसकती औ इसीकारण श्रुतियोंमें इस चौथी अवस्थाको अर्थात् चतुर्थपादको 'शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' कहा है अर्थात् 'शान्तम्' राग द्वेषादि सर्व विकार अरु विक्रियारहित है इसीकारण 'शिवम्' शुद्धबुद्ध मुक्त स्वभाव परमानन्द बोधस्वरूप है अरु 'अद्वैतम्' जिसके समान कोई दूसरा नहीं इस कारण सर्व भेद विकल्पसे रहितहै औ इसीको 'चतुर्थं मन्यन्ते' तीन अवस्थाओं वा पादोंकी अपेक्षा चतुर्थ अर्थात् तुरीयपद मानतेहैं क्योंकि विद्यमान जो विश्वादि तीनपाद अर्थात् तीनों अवस्था तिनसे विलक्षणहै, इसी चतुर्थ खंडके विषय श्रुति फिर कहती है कि—

'ॐ अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्य्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतएवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद' ॥

अर्थात् चतुर्थ चौथाखंड जोहै वह अमात्र है अव्यवहार्य्य है (वाग्मनसयोः क्षीणत्वात्) प्रपञ्च के उपशमवालाहै अर्थात् जिसके जानने मात्रसे संसार की निवृत्ति होतीहै। फिर शिवहै अर्थात् कल्याणरूपहै अद्वैतहै अर्थात् उसके समान दूसरा नहीं अथवा एक वा दो संख्या इत्यादिसे रहितहै जो ऐसे जानताहै सो अपने आत्मरूपसे अपने परमार्थरूप आत्माविषे सम्यक् प्रकार प्रवेशकरजाताहै अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंको तुरीयरूप अग्निमें दग्धकर जन्म मरणसे रहित होताहै ॥

उक्त प्रकार ॐकारके चारों खंडोंमें परब्रह्मकी सर्व शक्तियां प्रवेशकियेहुई हैं इसकारण सिद्धहुआ कि यह जोकुछ है सब ॐकार है औ सब उसीके व्याख्यान करनेवाले अर्थात् जनानेवाले हैं

फिर 'भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकारएव'* अर्थात् भूत, वर्तमान्- भविष्यत ये तीनों काल भी ॐकारही करके हैं अर्थात् इन तीनोंमें जोकुछ होचुका, होताहै और होगा, सब ॐकारही है फिर 'यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव' अर्थात् जोकुछ इन तीनों

---

* पाठकगणको विस्मृति न होजावे कि यह कोई नवीन श्रुतिहै, यह पृष्ठ ७ में ॐमित्येतदक्षरमिदंसर्वं ४४का खंडहै जिसका अर्थ होरहाहै।

कालों से अतीत है अर्थात् अव्याकृत है वह भी ॐकार ही है, तात्पर्य्य यह कि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, नाश के कारण तीनों काल का बोध होता है यथार्थ में भूत, वर्तमान, भविष्यत् कुछ है नहीं क्योंकि जिसको किसी समय भूत कहते हैं वह किसी समय वर्तमान औ भविष्यत् रहता है औ जो भविष्यत् वा वर्तमान रहता है वह किसी समय भूत होजाता है। जैसे मोहन का जन्म ता० २ आश्विन सुदी सम्वत् १९०२ में हुआ, तो बुद्धिमान विचारलेवें कि यह समय मोहन के पिता के जन्म समय भविष्यत् था, अब वर्तमान है औ मोहन के पुत्र के जन्मोत्सव के दिन भूतकाल होगया। एवम्प्रकार वस्तु तत्तु से काल को अवछिन्नकरने से तीनों कालों का बोध होता है वस्तु तत्तु न होने से केवल कालही मात्र है भूत, वर्तमान इत्यादि कुछ भी नहीं, इसीप्रकार सृष्टि के अभाव रहनेसे, तीनों कालों से अतीत केवल अव्याकृत ब्रह्मही रहता है जिसको वर्णद्वारा नहीं जना-सक्ते अनिर्वचनीय है तो वह भी ॐकारही है। इति।

प्रिय पाठकगण उक्त व्याख्या से ऐसा न समझ-लेवें कि इस ॐकार के केवल चारही खंड वा चारही मात्रा हैं वरु यह ॐकार उस पूर्णब्रह्म का वह आश्च-र्य्यमय वाचक है कि जैसे ब्रह्म को एक औ फिर अनेक

कहतेहैं तैसे इस ॐकार की भी एक औ फिर अनेक मात्रा हैं, पूर्व के ऋषि महर्षियों में जिसने इसमें जितनी मात्रा वेद शास्त्र द्वारा किंवा आचार्य्य द्वारा अनुभव की उतनीही मात्रा से इसकी उपासना कीहै ।

किस ऋषि ने कितनी मात्रा जानकर किस प्रकार उपासना की वर्णन कियाजाताहै ।

वाष्कल्य ऋषि के मतावलम्बी ॐकार को एक मात्रा, **साल** अरु **काइत्य** ऋषियों के मतावलम्बी दो मात्रा, **नारद** ऋषि के मतावलम्बी ढाई मात्रा, **मौण्डल** अरु **माण्डूक्य** के मतावलम्बी तीन मात्रा और सप्तसिद्धान्तियों के अनुयायी औ कई अन्य ऋषियों ने भी तीनही मात्रा औ कोई साढेतीन मात्रा, **पराशरादि** अध्यात्म चिन्ता करनेवाले चार मात्रा, भगवान् **वसिष्ठ** के मतविषे साढ़ेचारमात्रा, फिर किसीने पाँच, किसीने छो, किसीने सात, इसी प्रकार भिन्न २ ऋषियों ने ३८, ४९, ५२, ६३, ६४ मात्रा पर्य्यन्त जानकर ॐकार की उपासना की है किन्तु सच तो यह है कि यह ॐकार अनन्त मात्रा वाला है और फिर अमात्रा है ।

अब भिन्न २ मात्रारूप से भजनकरनेवाले भिन्न २

ऋषियों के इस ॐकार विषे क्या २ सिद्धान्त हैं वर्णन कियेजातेहैं ।

एकमात्रावालों का सिद्धान्त ।

वाष्कल्य ऋषि के मतावलम्बी जो ॐकार को एक मात्रारूप जानकर भजनकरतेहैं उनका यह सिद्धान्त है कि इस ॐकार रूप एकाक्षरब्रह्म के दो स्वरूप हैं एक "सगुण" दूसरा "निर्गुण" इसकारण दोनों रूप से इसकी उपासना करतेहैं । सगुण उपासनावाले यह जानतेहैं कि सगुणरूप का अधिष्ठान निर्गुण है और कोई वस्तु अपने अधिष्ठान से पृथक होतानहीं इस कारण यह सगुण अपने अधिष्ठान निर्गुण से पृथक न होनेके कारण एकही है अभेद है इस से इतर निर्गुण नहीं। और निर्गुण उपासनावाले यह जानतेहैं कि वही निर्गुण अपनी इच्छाशक्ति से सगुण होताहै (**इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते ।** ऋ० वेद।) अर्थात् 'इन्द्रः' वही ईश्वर 'मायाभिः' अपनी माया से 'पुरुरूप' अनेक रूपों को 'ईयते' धारणकरताहै इसकारण निर्गुण से सगुण इतर नहीं, इसीकारण उक्त प्रकार सगुण, निर्गुण, दोनों की एकता होने से इस ॐकार को एक मात्रा कहतेहैं जिस से ये सर्व स्थूल सूक्ष्म, कार्य्य कारण,

अधे ऊर्ध्व, स्थावर जङ्गम, एकही विराटमूर्त्ति होकर प्रकट है जो ॐकाररूप नादही से बनाहुआ ॐकारही का रूप है। इसकारण ॐकार को एकमात्रारूप जान कर भजनकरतेहैं इति।

दो मात्रावालों का सिद्धान्त।

साल अरु **काइत्य** के मतावलम्बी जो ॐकार को दो मात्रारूप जानकर भजतेहैं उनका यह सिद्धान्त है कि ॐकार का एक स्थूलरूप कार्य्यमात्रा है और दूसरा सूक्ष्मरूप कारण मात्रा है. अर्थात् प्रथम मात्रा से जाग्रत्‌रूप स्थूल विराट की सारीरचना वनती है और दूसरी मात्रा से सूक्ष्म, स्वप्न तैजस की सारीरचना वनती है और इन दोनों का लक्ष्यरूप साक्षी चेतन्य एकही है जिसके आश्रय ये दोनों मात्रा हैं और वह आप अ-मात्रा है जिसकी उपासना हम इस ॐकाररूप द्विमात्रिक ॐकार के आलम्बन से करतेहैं इति।

ढाईमात्रावालों का सिद्धान्त।

नारद ऋषि के मतावलम्बी जो ॐकार को ढाई मात्रा जानकर स्मरण करतेहैं उनका यह सिद्धान्त है कि ॐकार की प्रथम मात्रा अकार जाग्रत् जगत् अ-

पने स्थूलशरीर सहित और दूसरी मात्रा उकार स्वप्न रूप जगत सूक्ष्मदेह सहित है और अर्धमात्रा मकार सुषुप्तिरूप जगत् कारणदेह सहित है जो चेतन्य तत्त्व है औ सब का ज्ञाता है उसका ज्ञाता कोई भी नहीं इसकारण उसका नाम अर्धमात्रा है। ऐसे ॐकार को ढाईमात्रा जान उसके आश्रय उस पूर्णब्रह्म जगदीश्वर की उपासना करतेहैं।

तीनमात्रावालों का सिद्धान्त।

गौण्डल ऋषि के मतावलम्बी जो ॐकार को तीनमात्रा जानकर उपासना करतेहैं उनका सिद्धान्त यह है कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, ये तीन अवस्था, अकार, उकार, मकार, ये तीन मात्रा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन देवता इनसबों का संघातरूप वह संपूर्ण स्थूल, सूक्ष्म औ कारण रूप जगत् का अधिष्ठान यह ॐकार ही है जो स्वयं मात्रादि उपाधि-रहित अमात्रा है, सर्वाधिष्ठान रूप है जिसकी उपासना द्वारा परमपद लाभहोताहै॥

अब जाननाचाहिये कि सप्तसिद्धान्ती लोग भी इस ॐकार को तीनही मात्रा जानकर उपासनाकरतेहैं वे सप्तसिद्धान्त ये हैं। १—हिरण्यगर्भ सिद्धान्त.

२—सांख्यशास्त्रकर्ता कपिलदेव सिद्धान्त. ३—कर्मवादी अपान्तरतम मुनि सिद्धान्त. ४—सनत्कुमार सिद्धान्त. ५—ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्त. ६—पशुपति (शिव) सिद्धान्त. ७—पंचरात्र विष्णु, सिद्धान्त ॥ इन सप्तसिद्धान्तवालों ने ॐकार के तीनमात्रा को नव नव भेद से निरूपण कियाहै इसलिये सातों सिद्धान्तों के नव नव भेद होने के कारण एक ॐकार के ६३ भेद होगयेहैं जिनका वर्णन आगे कियाजाता है ॥

१—हिरण्यगर्भसिद्धान्त (ब्रह्माजी का सिद्धान्त) इस सिद्धान्तवाले यों कहतेहैं कि इस ॐकार को, तीनमात्रारूप, तीनब्रह्मरूप, और तीनअक्षर रूप, जानकर उपासना करनीचाहिये, वे ये हैं ॥ तीन मात्रा—अग्नि, वायु, सूर्य्य, अर्थात् जीव, ईश्वर, आत्मा, यही तीनमात्रा हैं, 'अग्नि' को जीव इसकारण कहतेहैं कि यही अग्नि वैश्वानर रूप से देहों में स्थित होकर सर्व का भोक्ता कर्ता बनाहै प्रकट है कि यदि शरीर में अग्नि अर्थात् गर्मी न रहे तो मृतक होजावे इसकारण अग्नि को जीव कहा यही प्रथम मात्रा है ॥ द्वितीय मात्रा 'वायु' जिसको ईश्वर कहा, कारण यह कि जैसे ईश्वर सर्वों में श्रेष्ठ है तैसे इस शरीर रूप

क्षुद्र ब्रह्माण्ड में प्राणवायु सर्व इन्द्रियों के सहित मन इत्यादि का चलानेवाला सब में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ औ सबों में प्रथम है (प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ श्रुति) यही प्राणवायु सब जीवों की आयु है "ॐ प्राणोहि भूतानामायुः सर्वमेव त आयुर्यन्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते" फिर "प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्" "प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से यही प्राणवायु चौरासीलक्षयोनियों में स्थित होकर सब जीवों की रक्षाकररहाहै इस कारण ईश्वररूप कहागया, यही द्वितीयमात्रा है ॥

तृतीयमात्रा 'सूर्य्य' है जो सम्पूर्ण का साक्षी है इसकारण आत्मा रूप होकर सर्वत्र व्यापरहाहै सबका प्रकाशक और द्रष्टा है क्योंकि यदि आत्मा न हो तो किसी शरीर का प्रकाश न हो, वेदों में भी सूर्य्य को जगत् का आत्मा कहाहै यथा 'सूर्य्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इस वेद के मंत्र से सूर्य्य को आत्मा कहना विहित है यही तृतीयमात्रा हुआ।

उक्त प्रकार ॐकार के तीनों मात्रा का वर्णन हुआ अब ॐकार के तीन ब्रह्म का वर्णन करतेहैं।

तीनब्रह्म - ऋग, यजुः साम, यही तीनों वेद ॐकार के तीनों ब्रह्महैं, क्योंकि बुद्धिमानों पर प्रकट

है कि वेद शब्दब्रह्म हैं औ शब्द अक्षरों करके संक-
लित हैं औ अक्षर ॐकार से उत्पन्न हैं जैसा आगे
चतुर्मात्रावालों के सिद्धान्त से प्रकट होगा इसकारण
ॐकार अक्षरों का बीज होने से वेदों का भी बीज
हुआ (ॐकार सर्व वेदानां वीजं) इसलिये ऋग, यजुः,
साम ॐकार के तीन ब्रह्म हैं ॥

तीन अक्षर—अ, ऊ, म; ये ॐकार के तीन
अक्षर हैं जिनसे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, ये तीन अव-
स्थारूप कार्य्य होतेहैं जिनका वर्णन पूर्व में होचुका
(देखो पृष्ठ ४) ।

उक्तप्रकार तीन मात्रा, तीन ब्रह्म, तीन अक्षर
इन नव भेदवाले ॐकार द्वारा ब्रह्म की उपासना से
परमपद लाभहोना हिरण्यगर्भवालों का सिद्धान्त है।

२. कपिलदेवसिद्धान्त—इस सिद्धान्त
वाले यों कहतेहैं कि जो प्राणी ॐकार को 'तीनज्ञान'
'तीनगुण' 'तीनकारण' इन नवों भेदों का समष्टि
जानकर उपासना करताहै वह परमपद को प्राप्तहोताहै ।

तीनज्ञान—व्यक्तज्ञान, अव्यक्तज्ञान, ज्ञेयज्ञान,
यही तीन ज्ञानहैं । पंचमहाभूत और इनके कार्य्य
घट पट इत्यादि जो व्यक्त अर्थात् आगमापायी औ

अनित्य हैं इनको ऐसा जानना कि इनका सदा आवि-र्भाव औ तिरोभाव हुआकरताहै अर्थात् एकसमय उत्पन्न होतेहैं औ दूसरे समय नाश होजातेहैं इसकारण ये अनित्य हैं ऐसे जानने को 'व्यक्तज्ञान' कहते हैं, इनका जो कारण पंचतन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, फिर अहंकार, महत्तत्व, औ प्रकृति इन आठों अव्यक्त अर्थात् नित्यवस्तुओं का जो ज्ञान वह 'अव्यक्त ज्ञान' है, फिर यथार्थ आत्माका ज्ञान अर्थात् शुद्ध आत्मज्ञान को 'ज्ञेयज्ञान' कहतेहैं ये तीनों ज्ञानहुए, अब तीन गुणों का भेद सुनो ।

तीनगुण—सत्त्व, रज, तम, ये तीनगुण हैं, तहां सत्त्वगुण से ज्ञान, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, शान्ति, दया, तेज, क्षमा, शौच इत्यादि दैवीसम्पत्ति * फिर देवता इत्यादि उत्तम योनि अरु स्वर्ग इत्यादि उत्तम-लोक उत्पन्न होतेहैं । रजोगुण से काम, राग, इत्यादि अरु मनुष्य इत्यादि मध्यमयोनि अरु मनुष्यलोक इत्यादि मध्यमलोक उत्पन्न होतेहैं । तमोगुण से अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, निद्रा क्रोध हिंसा, दम्भ, पाषण्ड

---

* दैवी औ आसुरी दोनों सम्पदाओं के लिये देखो श्रीमद्भ-गवद्गीता अध्याय १६ श्लोक २, ३, ४, ।

इत्यादि आसुरीसम्पत्ति पशु, पक्षि इत्यादि अधम योनि औ नरक इत्यादि अधमलोक उत्पन्न होतेहैं । इसी प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि त्रिगुणात्मक है ऐसा जानना, अब तीनकारणों को कहतेहैं ।

तीनकारण— मन, बुद्धि, अहंकार, ये तीन कारण हैं क्योंकि इनही करके सारी वृत्तियां उठतीहैं और इनही करके संकल्प विकल्प द्वारा दुःख सुख प्राप्त होतेहैं और सर्व वस्तुओं में प्रवृत्ति होतीहै (स्पष्टहै) ।

उक्तप्रकार जो तीनों ज्ञान, तीनोंगुण, तीनोंकारणं, इन नवों भेदों का अधिष्ठान औ समष्टिरूप केवल एक ॐकार को जानकर उपासना करताहै वह परमपद को प्राप्तहोताहै ।

३. अपान्तरतममुनि सिद्धान्त—

इस सिद्धान्तवाले यह कहतेहैं कि 'तीन अग्नि' 'तीन देवता' 'तीनप्रयोजन' इन नवों भेदों से ॐकार की उपासना करनीचाहिये ।

तीन अग्नि—आहवनीयाग्नि, गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि, यही तीन अग्नि हैं जो जगत् की उत्पत्ति, पालन, अरु संहार के कारण हैं । 'आहवनीयाग्नि' उस अग्नि को कहतेहैं जिस से यज्ञादि होतेहैं और जिसकी उपा-

सना से सर्व प्रकार की मनोकामनायें सिद्ध होतीहैं और 'यज्ञाद्भवति पर्ज्जन्यो', इस गीता के प्रमाण से इसी अग्नि से पर्ज्जन्य (मेघ) और उस पर्ज्जन्य के पृथिवी में पड़ने से अन्न उत्पन्न होतेहैं, फिर 'अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' इस श्रुति प्रमाण से अन्न से सब जीव उत्पन्न होतेहैं इसकारण यह 'आहवनीयाग्नि' जगदुत्पत्ति का कारण हुआ। दूसरा 'गार्हपत्याग्नि' गृहस्थों के पाकशाला के अग्नि को कहतेहैं जिस से सर्वप्रकार के अन्न पकायेजातेहैं जिनके द्वारा सब जीवों का पालन होताहै इसलिये यह अग्नि पालन का कारण हुआ। तीसरा 'दक्षिणाग्नि' वह अग्नि है कि जिस दिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों का यज्ञोपवीत संस्कार होताहै उसदिन वेदमन्त्रों से स्थापित कियाजाताहै और उसी दिन से बराबर प्रातः औ सायं दोनों सन्ध्याओं में उस अग्नि में हवन कियाजाताहै, इसी को अग्निहोत्राग्नि भी कहतेहैं, इसी अग्नि में यजमान हवनकर्ता का शरीर मृतक होने के पश्चात् भस्म कियाजाताहै इसीकारण यह अग्नि संहार का कारण हुआ। इसलिये उक्तप्रकार ये तीनों अग्नि जगत् के उत्पत्ति, पालन, अरु संहार के कारण हुए। अब तीनों देवताओं का वर्णन कियाजाताहै।

तीन देवता—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यही तीन देवताहैं जिन से जगत् के उत्पत्ति, पालन अरु संहार होतेहैं (स्पष्ट है)।

तीनप्रयोजन—धर्म, अर्थ, काम, ये तीन प्रयोजन हैं सम्पूर्ण जगत् इनही तीनों के कारण वर्तमान है और इनही तीनों में वरत रहा है इसलिये ये तीनों भी जगत् के प्रवर्तकहेतु हैं।

उक्तप्रकार तीनों अग्नि, तीनों देव, तीनों प्रयोजन को जो प्राणी ॐकार के तीनों वर्ण अकार, उकार, मकार से बनाहुआ जानकर ॐकार की उपासना करताहै वह परमपद को प्राप्त होताहै।

४. **सनत्कुमार सिद्धान्त**—इस सिद्धान्तवाले 'तीन काल', 'तीन लिङ्ग', 'तीन संज्ञा', इन नवों भेदवाला जानकर उपासना करतेहैं जिनका वर्णन नीचे कियाजाताहै।

तीनकाल—भूत, वर्तमान, भविष्यत्, ये तीनकाल हैं, एकही काल उपाधिभेद से तीन संज्ञावाला होताहै जिसका वर्णन पूर्व में होगयाहै (देखो पृष्ठ १२, १३) यही काल अपने स्वभाव से सर्व पदार्थों को अदलबदल औ अन्यथा करता रहताहै एकरस नहीं रहनेदेता जैसे यह देही प्रथम बालक अतिसुन्दर कोमल रहताहै

फिर कालद्वारा युवा हो वृद्ध होताहुआ नष्ट होजाताहै,
परार्ध से लेकर साल, महीना, पक्ष, सप्ताह, दिन,
तिथि, प्रहर, घड़ी, पल, विपल, निमष, कला, काष्ठा
इत्यादि में जोकुछ होचुका, होताहै, होगा सब कालही
करके देखाजाताहै, इसकारण यही एक काल ॐकार
प्रणव के अ, उ, म, तीनमात्राओं के कारण भूत,
भविष्यत्, वर्तमान तीन विभाग को पायाहै।

तीनलिङ्ग—स्त्री, पुरुष, नपुंसक, (स्पष्टहैं) इस
सृष्टि में यावत्पर्यन्त स्त्री, पुरुष, नपुंसक, चौरासीलक्ष
योनियों में हैं ॐकार के तीनों मात्रा से बनेहैं।

तीन सन्धि—बहिःसन्धि, मध्यसन्धि, अन्त-
सन्धि, ये तीनों सन्धियां विश्व, तैजस, प्राज्ञ, अर्थात्
जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिरूपहैं। अर्थात् विश्व जो जाग्रत्
अवस्था उस समय चैतन्य की प्रज्ञा (बुद्धि) बाहर के
पदार्थों से सन्धि करतीहै इसकारण 'ॐ जागरितस्था-
नोबहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्गः' माण्डूक्योपनिषद् की श्रुति
प्रमाण से यह अवस्था जो ॐकार के प्रथम मात्रा अ-
कार से बनीहै बहिःसन्धि कहलातीहै। 'ॐ स्वप्नस्था-
नोन्तःप्रज्ञः &c.' श्रुति प्रमाण से स्वप्नावस्था में प्रज्ञा
(बुद्धि) अन्तः अर्थात् शरीर के भीतर के पदार्थों से

सन्धि करतीहै अर्थात हृदयकमल जो स्वयं शरीर की मुख्य सन्धि है उसके साथ सन्धि करतीहै इसकारण यह स्वप्नावस्था जो ॐकार के दूसरी मात्रा उकार से बनीहै सन्धसन्धि कहलातीहै फिर 'ॐ यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत् सुषुप्तम् सुषुप्तस्थान एकीभूतः &c.' श्रुतिप्रमाण से सुषुप्त अवस्था में चैतन्य की प्रज्ञा जाग्रत् औ स्वप्न के कार्य्यों को छोड़ एकदम क्रान्त हो एकीभूत अर्थात् घन होजाती है इसकारण इस अवस्था को जो ॐकार की तीसरीमात्रा मकार से बनीहै क्रान्तसन्धि कहतेहैं।

इसकारण जो प्राणी उक्तप्रकार तीनकाल, तीन लिङ्ग, तीनसन्धि, का अधिष्ठान एक ॐकार को जान कर उपासना करताहै वह परमपद को प्राप्तहोताहै।

५. **ब्रह्मसिद्धान्त**—इस सिद्धान्तवाले ॐकार को 'तीनस्थानरूप', 'तीनपादरूप', 'तीनप्रज्ञा रूप', जानकर उपासना करतेहैं।

तीनस्थान—हृदय, कण्ठ, मूर्द्धा, यही तीन मुख्य स्थानहैं, क्योंकि ॐकार का उच्चारण इनही तीन स्थानों से होताहै (स्पष्ट है)।

तीनपाद्—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, यही तीनों अवस्था तीनपाद कहलातेहैं जो ओंकार की तीनों मात्रा अ, उ, म, से उत्पन्न हैं (मात्रा पादाश्च पादाश्च मात्रा) इस श्रुति प्रमाण मे जो मात्रा हैं वेही पादहैं औ जो पादहैं वेही मात्रा हैं, और ये तीनों पाद (अवस्था) ऊपर कथनकियेहुए तीनों स्थानों में क्रमशः वर्ततेहैं तहां मूर्द्धा में जाग्रत, कण्ठ में स्वप्न, अरु हृदय में सुषुप्ति अवस्था वर्तमान है।

तीनप्रज्ञा—बहिष्प्रज्ञा, अन्तःप्रज्ञा, घनप्रज्ञा, यही तीनों प्रज्ञा हैं। जाग्रदवस्था जो मूर्द्धा में वर्तमान है उस समय प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि इन्द्रियों के साथ बाहर के घटपट इत्यादि वस्तुओं को ग्रहण करतीहै इसकारण इस अवस्था में बुद्धि को बहिष्प्रज्ञा कहतेहैं। स्वप्नावस्था जो कण्ठ में वर्तमान है उस समय प्रज्ञा शरीर के भीतर सूक्ष्मसङ्कल्प में इन्द्रियों को लियेहुए संपूर्ण सृष्टि को भीतरही भीतर रचतीहै इसकारण इस समय बुद्धि अन्तःप्रज्ञा कहलाती है। सुषुप्ति अवस्था जो हृदयस्थान में वर्तमानरहतीहै उस समय संपूर्ण प्रपञ्च के अभाव से बुद्धि इन्द्रियों के साथ चैतन्य में लयहोकर घन होजातीहै, किसी प्रकार का व्यवहार इन्द्रियों के साथ नहीं रहता सबमिल एकीभूत होजाती

है इसकारण इस अवस्था में बुद्धि को घनप्रज्ञा कहतेहैं।

उक्तप्रकार तीनस्थानरूप, तीनपादरूप, तीनप्रज्ञा रूप, इन नवों भेदों का कारण अ, उ, म, त्रिवर्णात्मक ओंकाररूप प्रतीक द्वारा जो परब्रह्म की उपासना करता है वह परमपद को प्राप्तहोताहै।

६. **पशुपतिसिद्धान्त**—पशुपति अर्थात् शिवजी के सिद्धान्तवाले यों कहतेहैं कि यह ओंकार 'तीन अवस्थारूप', 'तीन भोग्यरूप' 'तीन भोक्तारूप' है

तीन अवस्थारूप—शान्त, घोर, मूढ़, यही तीन अवस्था हैं, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, में चित्तवृत्ति को उक्त तीनों नाम से पुकारतेहैं। अर्थात् जाग्रत् अवस्था जो सत्त्वगुणात्मक है तिसमें चित्त शान्तरूप होताहै, स्वप्नावस्था जो रजोगुणात्मक है तिसमें चित्त घोररूप होताहै, सुषुप्ति अवस्था जो तमोगुणात्मक है तिसमें चित्त मूढ़रूप होताहै, फिर इन तीनों जाग्रत्, स्वप्न औ सुषुप्ति अवस्थाओं में एकएक के अन्तर्गत शान्त, घोर, मूढ़, तीनों दशा व्यापतीहैं जिनका वर्णन संक्षिप्तरूप से इस स्थान में कियाजाताहै बुद्धिमान भलीभांति विचारलेवें।

जाग्रत्-अवस्था में वस्तु तस्तुओं का ज्यों का त्यों भानहोना शान्त अवस्था कहलाती है औ वस्तुओं का विपर्य्यय भानना जैसे रज्जु में सर्प औ रजत में सीप यह घोर अवस्था है औ किसी वस्तु का भान नहीं होना यह मूढ़ अवस्था है । इसीप्रकार स्वप्न अवस्था में भी वस्तुओं का ज्यों का त्यों भानहोना शान्त, औ उलटा पुलटा और का और भानना जैसे देखपड़ा हाथी फिर भासनेलगा पक्षी इसको घोर औ जो वस्तु भानहोनेपर भी स्वप्न में नहीं भासा जागनेपर एकदम स्मरण नहीं रहा उसे मूढ़ अवस्था कहतेहैं । इसीप्रकार सुषुप्ति में जो चित्त का एकदम लीनहोना (जागनेपर यह कहना कि मैं अत्यन्त आनन्द में सुखपूर्वक सोयाथा) शान्त अवस्था, अरु जो जागनेपर यह कहउठताहै कि मैं अस्थवस्त सोया सो सुषुप्ति में घोर और जो इसप्रकार कहउठताहै कि मैं ऐसा सोया कि एकदम कुछ सुधी न रही सो सुषुप्ति में मूढ़ अवस्था है । अब दूसरे प्रकार से भी इन अवस्थाओं का वर्णन करतेहैं । जाग्रत् में जो नानाप्रकार चित्त को सुख से विश्राम होता है सो शान्त, अरु जो दुःख से विश्राम होताहै सो घोर, जो मूर्च्छा इत्यादि अवस्था होतीहै सो मूढ़ अवस्था कहलातीहै । फिर जाग्रत् अवस्था में जो जप,

दान, पूजा, पाठ की ओर चित्त की प्रवृत्ति होती है सो शान्त, अरु जो व्यवहार आदि राजसी कर्मों में प्रवृत्ति होतीहै सो घोर, अरु जो हिंसा, मद्यपान, आदि तमोगुण कर्मों में प्रवृत्ति होतीहै सो मूढ़ अवस्था है, इसीप्रकार स्वप्न में भी तीनों को ज्यों का त्यों जानना। फिर सुषुप्ति में भी जो सात्त्विक वृत्तियों को लियेहुए चित्तवृत्ति चैतन्य में लयहोजातीहै सो शान्त औ राजसी वृत्ति के साथ लयहोने को घोर और तामसी के साथ लयहोने को मूढ़ अवस्था कहतेहैं। फिर जाग्रत् अवस्था में जो आत्मविचारादि में चित्त लय होताहै सो शान्त, विषयानन्द में जो लीन होताहै सो घोर औ आसुरी सम्पदा में जो लयहोताहै सो मूढ़ अवस्था है। इसीप्रकार स्वप्नशान्त, स्वप्नघोर औ स्वप्नमूढ़ को भी जानना, इसीप्रकार सुषुप्ति में जो आत्मविचार लेकर चित्त लयहोताहै सो सुषुप्तिशान्त, जो विषयसंस्कार लेकर लयहोताहै सो सुषुप्तिघोर औ जो मिथ्या देहाभिमान लेकर लयहोताहै सो सुषुप्ति मूढ़ है।

उक्तप्रकार तीनों अवस्था का वर्णन होचुका अब तीनों भोग्य का वर्णन कियाजाताहै।

तीनभोग्य—अन्न, जल, सोम, यही तीन भोग्य

हैं। जिन वस्तुओं से तुष्टि, पुष्टि औ आनन्द होवे अर्थात् संपूर्ण सृष्टि के जीवों का पालन पोषण होवे वे सब भोग्य हैं औ प्रकट है कि अन्न, जल से जीवों का पालन पोषण होताहै औ सोम अर्थात् चन्द्रमा से सर्व प्रकार के अन्न, औषधि, लता इत्यादिकों में जो जीवों की रक्षा के कारण हैं अमृतरस टपक टपक कर पड़ताहै जिससे वे पुष्ट होतेहैं इसकारण अन्न, जल, सोम, यही तीन भोग्य हुए, अब तीन भोक्ताओं का वर्णन करतेहैं।

तीन भोक्ता—वायु, अग्नि, सूर्य्य, ये तीन भोक्ता हैं, क्योंकि सर्व बुद्धिमानों पर प्रकट है कि प्राणी को क्षुधा, पिपासा इत्यादि प्राण के कारण होती है यदि शरीर में प्राण न हो तो खाने पीने की शक्ति एकदम जातीरहै इस से प्रकट है कि प्राण भोक्ता है शरीर भोक्ता नहीं, अतएव प्रथम भोक्ता प्राण अर्थात् वायु हुआ, फिर दूसरा भोक्ता अग्नि है प्रकट है कि काष्ठादिरूप को प्रत्यक्ष भोगताहै औ शरीर के भीतर जठराग्नि होकर अन्न इत्यादिकों को भोगताहै इसकारण अग्नि भी प्रत्यक्ष भोक्ता हुआ। फिर तीसरा भोक्ता सूर्य्य है जो सर्व प्रकार के रसों को भोगताहै इसलिये यही तीनों भोक्ता हैं।

तृतीयमात्रा जीवकला औ अर्द्धमात्रा सर्वाधिष्ठानचैतन्य परमपदरूप है जिसमें सब स्थूल, सूक्ष्म इत्यादि लय होजातेहैं औ जो स्वयं मात्रारहित हैं जिसकी उपासना इस साढ़ेतीन मात्रावाले समात्रिक ॐकार द्वारा करने से परमपद लाभ होताहै ।

चारमात्रावालों का सिद्धान्त ।

पराशरादि ऋषियों के मतावलम्बी जो इस ॐकार को चारमात्रा जानकर उपासना करतेहैं व यों कहतेहैं कि प्रथममात्रा अकाररूप स्थूलविराटपुरुष, द्वितीयमात्रा उकाररूप सूक्ष्महिरण्यगर्भ, तृतीयमात्रा मकाररूप कारण अव्याकृत औ चौथा बिन्दुरूप चैतन्य पुरुष है जिसके आश्रय स्थूल, सूक्ष्म, कारण, व्यष्टि, समष्टि, सकल रचना हैं जो सर्वाधार चैतन्य परमपद है जिसकी उपासना इस चारमात्रावाले ॐकारद्वारा करने से परमतत्त्व लाभहोताहै ।

साढ़ेचारमात्रावालों का सिद्धान्त ।

वसिष्ठादि ऋषियों के मतावलम्बी जो इस ॐकार को साढ़ेचार मात्रा जानकर उपासना करतेहैं उनका सिद्धान्त यह है कि प्रथममात्रा अकार स्थूल

तीन व्यूह हैं । व्यूह कहिये सेना की गंभीर रचना को, औ सेना के चारअङ्ग औ तीन भाग होतेहैं, 'हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गम्याचतुष्टयम्' अर्थात् हस्ती अश्व, रथ, पैदल, यही चारअंग हैं औ सेनामुख (सेना-का अग्रभाग) सेनाभुजा (सेना का मध्यभाग) औ सेनापृष्ठ (सेना का पिछलाभाग) यही तीन भाग हैं, तहां उक्त चारों अंगों के साथ तीनों भागों को दृढ़कर रचने का नाम व्यूह है, जिसमें संकर्षण सेनामुख की रचना में, प्रद्युम्न सेनाभुजा की रचना में अनिरुद्ध सेनापृष्ठ की रचना में अत्यन्त चतुर हैं। यह तो लौ-किक व्यूह की रचना दिखलाई अब पारलौकिक व्यूह सुनिये । कर्म, उपासना, ज्ञान यही तीन पारलौकिक व्यूह की रचना हैं, काम, क्रोध इत्यादि शत्रुओं को विजयकरने के निमित्त जो प्राणी कर्म, उपासना, ज्ञान तीनों व्यूहों को भली भांति सुसज्जित कर रचनाहै वह वासुदेव तक पहुंचना है सो इन तीनों व्यूहों अर्थात् कर्म, उपासना, ज्ञान, के अंगों के सिद्ध करनेवाले वा अधिष्ठातृदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न औ अनिरुद्ध हैं इस-कारण ये तीन व्यूह कहलातेहैं । जो प्राणी उक्त प्रकार तीन आत्मा, तीन स्वभाव, तीनव्यूह को ॐ-कार के अ, उ, म, तीनों मात्राओं से सुशोभित जान

कर सम्पूर्ण जगत को वासुदेवमय जानताहै और 'सर्वमिदमहञ्च वासुदेवः' अर्थात जो कुछ जड़, चैतन्य, अहं, त्वं इत्यादि भान होरहाहै सब वासुदेवमय है ऐसे जान इस ॐकारद्वारा उस वासुदेव की उपासना करताहै वह वासुदेव को प्राप्त होताहै ।

इहांतक सप्तसिद्धान्तियों के मतानुसार ॐकार को त्रैमात्रिक जानकर भिन्न २ विधि से उपासना करने की रीति देखलाईगई ।

इतने मत से जो एक ॐकार के ६३ भेद होजातेहैं वे इस स्थान में यन्त्र बनाकर पाठकगणों को देखलायेजातेहैं । ☞

साढ़ेतीन मात्रावालों
का
सिद्धान्त ।

इस ॐकार को साढ़ेतीन मात्रा जानकर उपासना करनेवालों में कोई यों कहताहै कि अकार, उकार, मकाररूप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन मात्रा हैं औ अर्द्धमात्रारूप चैतन्य ब्रह्म है औ कोई ऐसा कहताहै कि प्रथममात्रा स्थूलजगत, द्वितीयमात्रा सूक्ष्मजगत,

तृतीयमात्रा जीवात्मा औ अर्द्धमात्रा सर्वाधिष्ठान चैतन्य परमपदरूप है जिसमें सब स्थूल, सूक्ष्म इत्यादि लय होजाते हैं औ जो स्वयं मायारहित है जिसकी उपासना इन साढ़ेतीन मात्रावाले समाधिक ॐकार द्वारा करने से परमपद लाभ होताहै ।

चारमात्रावालों का सिद्धान्त ।

पराशरादि ऋषियों के मतावलम्बी जो इस ॐ-कार को चारमात्रा जानकर उपासना करतेहैं वे यों कहतेहैं कि प्रथममात्रा अकाररूप स्थूलविराट्रूप, द्वितीयमात्रा उकाररूप सूक्ष्महिरण्यगर्भ, तृतीयमात्रा मकाररूप कारण अव्याकृत औ चौथा बिन्दुरूप चैतन्य पुरुष है जिसके आश्रय स्थूल, सूक्ष्म, कारण, व्यष्टि, समष्टि, सकल रचना है जो सर्वाधार चैतन्य परमपद है जिसकी उपासना इस चारमात्रावाले ॐकारद्वारा करने से परमतत्त्व लाभहोताहै ।

साढ़ेचारमात्रावालों का सिद्धान्त ।

वशिष्ठादि ऋषियों के मतावलम्बी जो इस ॐ-कार को साढ़ेचार मात्रा जानकर उपासना करतेहैं उनका सिद्धान्त यह है कि प्रथममात्रा अकार स्थूल

जगत, द्वितीयमात्रा उकार सूक्ष्मजगत, तृतीयमात्रा सुषुप्ति है, चतुर्थमात्रा नादरूप परमशक्ति है औ अर्द्ध-मात्रा चैतन्यस्वरूप है जिसके आश्रय उक्त चारोंमात्रा स्थित हैं औ आप अमात्रा है जिसकी उपासना इस साढ़ेचारमात्रावाले ॐकारद्वारा करने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

पांचमात्रावालों का सिद्धान्त।

इनका सिद्धान्त यों है कि अकार अन्नमय-कोश, उकार प्राणमयकोश, मकार मनोमयकोश अर्द्धमात्रा विज्ञानमयकोश औ बिन्दुरूप आनन्दमय-कोश है इसकारण उक्त पांचोंमात्रा जिस चैतन्य अ-धिष्ठान के आश्रय अवस्थित हैं औ जो इन मात्राओं से रहित पञ्चकोशातीत है तिस ब्रह्म की उपासना इस पांच मात्रावाले ॐकार के द्वारा करने से परमपद की प्राप्ति होती है।

छः मात्रावालों का सिद्धान्त।

इनका यों विचार है कि प्रथममात्रा अकाररूप जाग्रत, द्वितीयमात्रा उकाररूप स्वप्न, तृतीयमात्रा मकाररूप सुषुप्ति, औ अनाहत से लेकर जितने प्रकार के शब्द औ वाचा हैं वे सब शब्दरूपी चतुर्थमात्रा हैं,

पांचवीं मात्रा बिन्दुरूप कारण प्रकृति है, औ छठवीं मात्रा साक्षी चैतन्य आत्मा है, एवन्प्रकार विशेष स्वरूप है जिसका, जो आप निर्विशेष सकल मात्राओं से रहित है. उसकी उपासना इस ६ मात्रावाले ॐकार द्वारा करने से अवश्य परमपद लाभ होताहै।

सातमात्रावालों का सिद्धान्त।

इस सिद्धान्तवाले यों कहतेहैं कि आकाश, वायु, अग्नि इत्यादि पांचों भूतों की पांच तन्मात्रा, छठवां अहंकार औ सातवां महत्तत्त्व यही इस ॐकार की सात मात्रा हैं औ आठवां आप चैतन्यपुरुष है जिसकी उपासना इस सप्तमात्रिक ॐकार द्वारा सदा सर्वदा करनी सर्व मनुष्यों को उचित है।

आठ से लेकर बहुमात्रा पर्यन्त वालों का सिद्धान्त।

इनसबों का सिद्धान्त यह है कि पांचों भूत औ मन, बुद्धि, अहंकार, ये आठों प्रकृतियां*, एक से

---

* भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेवच। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।

लेकर नव तक नवों अङ्क, दशों इन्द्रियां, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, एवम्प्रकार यावत् स्वर व्यञ्जन आदि अक्षर हैं, सो सब एक ॐकारही की मात्रा हैं, क्योंकि ये सब ॐकारही से स्फुरण होतेहैं, इसी से संपूर्ण सृष्टि ॐकाररूपही है, जिस किसी पदार्थ का नाम है सब उक्त मात्राओं के अन्तर्गत है इसकारण यह वर्णात्मक ॐकार सब नामों के विषे ओतप्रोत है, इसलिये इन महापुरुषों का सिद्धान्त यह है कि जो प्राणी इस बहुमात्रिक ॐकार द्वारा इसके वाच्य परब्रह्म-जगदीश्वर की उपासना करता है वह परमतत्त्व में लय होजाताहै ।

यहांतक ॐकार की एक मात्रा से लेकर बहु मात्रातक का विचार समाप्त हुआ अब आगे ॐकार के दश नामों की मीमांसा कीजातीहै ।

ॐकार के दश नामों का वर्णन ।

प्रियपाठकगण आलस्य परित्याग कर आगे लिखे ॐकार के दशों नामों का वर्णन पढ़ भलिभांति विचार-कर मनन करतेहुए अवश्यमेव इस परमसंत्र ॐकार का साधन करेंगे, इसलिये इस स्थान में ॐकार के दशों

नामों का वर्णन कियाजाताहै। जिनपुरुषों को इनबातों में रस नहीं है उनकेलिये तो "भैंस के आगे बेन बजाओ वह बैठी पगुरावे" की कहावत होजातीहै, अथवा किसी कवि का वचनहै "जेहिको कछु पीनस रोग ग्रसै कहलौं तेहि गंधि सुगंध सुंघावै" अर्थात् जिसपुरुष को पीनस रोग होवे तो उसे गंधी कितना भी भिन्न २ प्रकार के केवड़ा गुलाव, जूही इत्यादि को सुंघावे उसे एक का भी बोध नहीं होता इसी प्रकार जो प्राणी शास्त्रहीन श्रद्धा औ विश्वासरहित आलसी, प्रमादी, औ विषय के रोग से ग्रस्त हैं उसे तो इस पुस्तक को हाथ में लेनाही अत्यन्त कठिन है पढ़ना औ विचारना तो अलग रहे॥

अब इस ॐकार के दशोंनामों का वर्णन उनकी संक्षिप्त व्याख्या सहित कियाजाताहै॥

ॐकारं प्रणवं चैव सर्वव्यापिन मेवच।
अनन्तञ्च तथा तारं शुक्लं वैद्युत मेवच॥
तुर्यं हंस परब्रह्म इति नामानि जानते॥

(यह सार्ध श्लोक है)

अर्थात् १—ॐकार, २—प्रणव, ३—सर्व-

व्यापी, ४—अनन्त, ५—तार, ६—शुक्ल, ७—वैद्युत, ८—तुरीय, ९—हंस, १०—परब्रह्म. ये दशों नाम ॐकार के जानेजातेहैं ॥ अब इन दशों का अर्थ भिन्न २ संक्षिप्त रीति से कियाजाताहै ॥

प्रथम नाम ॐकार ।

यह पद 'अव' धातु से बना है जिसका वर्णन (पृष्ठ ३) में होचुका है किन्तु धातुपाठ में 'अव' धातु के अनेक अर्थ हैं जो साधारण संस्कृत में नहीं आते, वे ये हैं, गति, कान्ति, अवगम, प्रवेश, श्रवण, सामर्थ्य, याचन, क्रिया, दीप्ति, अवाप्ति, ग्रहण, व्याप्ति, आलिङ्गन, हिंसा, आदान, दहन, भाव, भाग, वृद्धि ॥ देखा जाताहै कि 'अव' का अर्थ वृद्धि भी है अर्थात् बढ़ना वा ऊंचा होना, फिर इसका नाम ॐकार इसीकारण है कि जब प्राणी सिद्धासन अथवा पद्मासन लगा शरीर, ग्रीव औ शिर को सीधा औ समकर इन्द्रियों को विषयों से औ मन को संकल्पों से रोक, ह्रस्व, दीर्घ औ प्लुत सहित यथाविधि इस ॐकार का जप करताहै तब यह ॐकार शरीर की साढ़तीनलक्ष नाड़ियों को ऊंची करदेताहै अर्थात् प्रफुल्लित करदेताहै, अथवा जब प्राणायाम की रीति से विधिपूर्वक इसका जप

कियाजाताहै तब प्राण ऊंचा होकर ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करताहै इसकारण इसका नाम ओँकार है। अथवा राजयोग अर्थात् अनाहतध्वनिश्रवण * द्वारा जब विशेष ध्यान में इसका जप कियाजाताहै तब प्राण ऊर्ध्वगति को प्राप्त होताहुआ ब्रह्मरन्ध्र को गमन करता है, फिर ऐसे बारम्बार अभ्यास करने से ब्रह्मरन्ध्र को प्राप्तहुआ प्राण धीरे २ ऊंचा होताहुआ "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्त्वमेति" इत्यादि प्रमाण से सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से निकल ब्रह्म को प्राप्त होताहै अर्थात् ऊर्ध्वगति होतीहै इसकारण इसका नाम ओँकार है ॥ फिर इस ओँकार का अर्थ अंगीकार भी है इसकारण जो कोई प्राणी इस ओँकार का नित्य जप करताहै उसके वर अथवा शाप को सब देवता देवी स्वीकार अर्थात् अंगीकार करतेहैं, इसलिये इसका नाम ओँकार है इति।

द्वितीय नाम प्रणव ।

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्व-वेद ये चारों वेद फिर ब्रह्मादि सर्व

---

* अनाहतध्वनिश्रवण की पूर्णविधि श्रीस्वामिहंसस्वरूपकृत प्राणायामविधि में देखलेना ।

देवता फिर ऋषि, मुनि, मनुष्य, दैत्य इत्यादि सब मिलकर इस ॐकार के तीनों अक्षर, अ, उ, म को बार २ प्रणाम करतेहैं इसकारण इसका नाम प्रणवहै।

तृतीयनाम सर्वव्यापी।

इस ॐकार का नाम सर्वव्यापी इसकारण है कि यह ॐकार भूलोक से लेकर सत्यलोक पर्य्यन्त सातों लोक ऊपर, औ अतल से लेकर पाताललोक पर्य्यन्त सातों लोक नीचे, इन चौदहों लोकों में फिर भूताकाश, मनआकाश, चिदाकाश, इन तीनों आकाश में जितने स्थूल, सूक्ष्म, स्थावर, जङ्गम, कार्य्य, कारणात्मक शरीर हैं सबों में नादरूप होकर व्यापरहाहै। फिर चारों वेद, उपनिषद, स्मृति, इतिहास, पुराण, गणित, निधि *, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देव विद्या, मन्त्र विद्या, धनुर्वेद (युद्धविद्या), तन्त्र, ज्योतिष, इत्यादि जितनी विद्या हैं सब में यह ॐकार मात्रारूप होकर ओतप्रोत है इसकारण इसका नाम सर्वव्यापी है।

अथवा "अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपम् प्रति रूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा

---

* निधि वह विद्या है जिस से महाकालादि का ज्ञान होताहै।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च" ॥ फिर, "किं करोमि क्व गच्छामि किं त्यजामि गृह्णामि किम्। आत्मना पूर्यते सर्वं महाकल्पाम्बुना यथा" ॥ फिर, "सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्म" इत्यादि प्रमाणों से आत्मा सर्वत्र पूर्ण है औ यह सर्वव्यापी आत्मा ॐकार का वाच्य है जिसका ॐकार वाचक है औ वाचक अपने वाच्य से भिन्न नहीं होता इसकारण यह ॐकार भी सर्वव्यापी हुआ।

चतुर्थ नाम अनन्त।

इस ॐकार का नाम अनन्त इसकारण है कि जो पुरुष इस ॐकार का भजन करताहै उसमें अनन्त शक्तियां प्रवेश करजातीहैं अथवा अनन्त जो परमपद तिसको प्राप्त होजाताहै। अथवा इस ॐकार का देश काल वस्तु करके अन्त पाया नहीं जाता क्योंकि इन पांचों भूतों में एक की अपेक्षा दूसरा अनन्त है तिनमें चार भूत वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इत्यादि की अपेक्षा यह आकाश अनन्तहै फिर ऐसे आकाश की अनन्तता इस ॐकार के लक्ष्य अर्थात् वाच्य आत्मा के भरपूर अस्तित्व के सामने एक बिन्दु अर्थात् प्रमाणु मात्र भी प्रतीत न होकर अन्त को प्राप्त होताहै इस

कारण इस ॐकार का नाम अनन्त है। अथवा इस ॐकार का कार्य्य, जो नानाप्रकार के ब्रह्माण्डों की रचना, जिसके नामरूपात्मक सूर्य्य, चन्द्र, तारा, पशु, पक्षी इत्यादि का अन्त किसी देवता दैत्य द्वारा जाना नहीं जाता इसकारण इसका नाम अनन्त है ॥

पञ्चम नाम तार।

ॐकार का नाम तार इसकारण है कि जो पुरुष इस ॐकार का भजन करताहै उसको यह आध्यात्मिक *, आधिभौतिक, आधिदैविक, इन तीनों प्रकार के दुःखों से तारदेताहै, अथवा इस भयङ्कर भवसागररूप महा अथाह सागर में जो काम क्रोधादि बड़े २ दुःखदायी मकर के मुंह में फंसेहुए अज्ञानी जीव बार २ तृष्णा इत्यादि के वशीभूत हो घोर धार में डूबतेहुए किसीप्रकार अपने छूटने की आशा न देखकर

* मान, अपमान, हानि, लाभ, काम, क्रोध, तृष्णा, चिन्ता इत्यादिक मानसिक दुःखों से जो नानाप्रकार के कष्ट होतेहैं उनको आध्यात्मिक दुःख कहतेहैं। कफ, पित्त, वायु इत्यादि के दोष से जो ज्वर, खांसी इत्यादि का दुःख और शस्त्र, सर्प, सिंहादिकों के द्वारा जो दैहिक दुःख उनको आधिभौतिक दुःख कहतेहैं। ग्रहादि देवताओं के कोप से जो दुःख उसको आधिदैविक कहतेहैं।

चिल्लातेहैं, रोतेहैं कि हाय मैं डूबा, मैं डूबा. ऐसे दुखी जीवों को यह ॐकार ऐसे घोर दुख से तारदेताहै इस कारण इसका नाम तार है ।

शास्त्रों में "नमस्ताराय" इत्यादि प्रमाणों से भी सिद्ध होताहै कि ॐकार के पर्य्याय अर्थात् स्थान में तार शब्द बार बार कथन कियागयाहै इसकारण ॐकार का नाम तार भी सिद्ध हुआ ।

षष्ठ नाम शुक्र ।

जो सर्वप्रकार के मलों से रहित शुद्ध निर्म्मल होवे उसे शुक्र कहतेहैं । अब जानना चाहिये कि सर्वप्रकार के मलों का कारण अविद्या है, तिस अविद्या से रहित सदा शुद्ध निर्म्मल निर्विकार यह एक ॐकारही है इसकारण इसका नाम शुक्र है, क्योंकि "शुद्धमपापविद्धम्" फिर "तदेवशुक्रन्तद्ब्रह्मत-देवमामृतमुच्यते" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से इस ॐकार को पापरहित शुद्ध निर्म्मल कहतेहैं । अथवा यह ॐकार अपने भक्तों को शीघ्रही निर्म्मल शुद्ध जो आत्मपद तिसविषे प्राप्त करदेताहै इसकारण इसका नाम शुक्र है । अथवा अपने भक्तों को

कायिक *, वाचिक, मानसिक तीनों प्रकार के पापों से क्रियमान †, सञ्चित, प्रारब्ध तीनों प्रकार के कर्मों से छोड़ाकर शुद्ध निर्म्मल करदेताहै इसकारण इसका नाम शुक्र है । अथवा तीन जो त्रिपुटी ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय; ध्यान, ध्याता, ध्येय; क्रिया, कर्त्ता, कर्म; इन त्रिपुटियों को नाशकर शुद्ध निर्म्मल आत्मपद में प्रवेश करा देताहै इसकारण इसका नाम शुक्र है, अथवा अज्ञान-वश अनात्मा जो देहादिकों के आश्रय बन्धन का हेतु, वर्णाश्रम का अभिमान, औ तिनके आश्रय कर्तृत्व औ भोक्तृत्व का अभिनिवेशन तिन सब पापों से अपने उपासक को शुद्धकर निर्म्मल ब्रह्मज्ञान में प्राप्त करदेता है इसकारण इसका नाम शुक्र है इति ॥

---

* शरीर से जो नानाप्रकार के पाप जैसे किसी जीव के मारडालना इसे कायिक, और वचन से जो पाप जैसे गाली देना अथवा झूठीगवाही देनी उसे वाचिक, औ मनही मन किसी की हानि विचारनी उसे मानसिक पाप कहतेहैं ।

† वर्तमान शरीर से जो अहंकारपूर्वक अनेक कर्म कियेजातेहैं उनको क्रियमान, औ अनेक जन्मों के जो कियेहुए कर्मों के संस्कार अन्तःकरणरूप भण्डार में एकत्र हैं उनको सञ्चित, और इस सञ्चित में से एक भाग जो एक किसी जन्म में भोगने को दियाजाताहै उसे प्रारब्ध वा भाग्य कहतेहैं ।

सप्तम नाम वैद्युत ।

विद्युत कहिये प्रकाश को, यह ॐकार अपने ज्ञानरूप प्रकाश से अपने उपासकों के हृदय का अज्ञानरूप अन्धकार, जिस से बार २ जन्म मरण रूप धक्कों को खातेहुए भवसागर के अति गंभीर भयंकर खाई में गिरतेहैं, नाश करदेताहै औ एवम्प्रकार जन्म मरण से रहित करतेहुए "ज्ञान दीपेन भास्वतः" श्रुति के प्रमाण से आत्मरूप प्रकाश को प्रकाशित करते हुए अर्थात् आत्मप्रकाश जो अपना स्वरूप उसे लखाते हुए नित्यमुक्त कर ज्योतिर्मय करदेताहै इसकारण इसका नाम विद्युत है । अथवा "यदेतद्विद्युतोव्यद्युतदा" इस केनोपनिषद् की श्रुति प्रमाण से जो ॐकार साधन के समय अपने साधकों के सामने विद्युत के समान चमककर फिर तिरोभाव होजाताहै अर्थात् बार २ चमककर मिटजाया करताहै इसकारण इसका नाम विद्युत है इति ॥

अष्टम नाम हंस ।

हंस कहिये सूर्य्य को, जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश द्वारा रात्रि के अन्धकार को नाश करदेताहै तैसे यह

ॐकार " आदित्य उद्गीथ एष प्रणवः " श्रुति प्रमाण से अपने उपासकों के हृदय की अविद्यारूप अन्धकार रात्रि को नाशकर ब्रह्मपद को प्राप्त करदेताहै इसकारण इसका नाम हंस है। अथवा हंस एक पक्षी विशेष है जो दूध औ पानी को विलग २ करदेताहै, वैसेही यह ॐकार रूप हंस अपने उपासक के चिज्जड़ग्रन्थि अर्थात् चैतन्य आत्मा औ जड़ अविद्या की जो गांठी उसे खोल विलग २ करदेताहै अर्थात् आत्म रूप क्षीर को अविद्यारूप नीर से विलग कर अजर अमर पद को प्राप्त करदेताहै इसकारण इसका नाम हंस है। इस गांठी के विषे गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपने रामायण में कहा है कि " जड़ चेतनहि ग्रन्थि पड़िगई, यदपि मृषा छूटत कठिनई ॥इति॥

नवम नाम तुरीय।

तुरीय उस परमानन्द अवस्था का नाम है जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्था का साक्षिरूप है जिस अवस्था के प्राप्त होने से सम्पूर्ण प्रपञ्च की शान्ति होजाती है " प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिव मद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः " माण्डूक्योपनिषद् की श्रुति के प्रमाण से जिस अवस्था में सम्पूर्ण प्रपञ्च

का उपशम अर्थात् संसारचक्र की प्रेरणा से शान्ति होती है औ परमानन्द शिव स्वरूप अद्वैत जिसके समान फिर कोई दूसरा सुख औ आनन्द नहीं प्राप्त होताहै और यही अवस्था अति उत्तम चौथी अवस्था है जो शुद्धचैतन्य आत्मस्वरूप है, तिस ऐसी उत्तम अवस्था को यह ॐकार प्राप्त करादेताहै इसलिये इसका नाम तुरीय है। अर्थात् यह ॐकार शीघ्र अपने उपासकों को यह तुरीय अवस्था जो मोक्षपद उसे प्राप्त करदेताहै इसकारण इसका नाम तुरीय है इति॥

दशम नाम परब्रह्म।

विदित होवे कि इस सृष्टि में जो कुछ शब्द बोलने औ सुनने में आते हैं सब ब्रह्मरूप हैं इसीकारण इनको शब्दब्रह्म कहते हैं, इनकी चार अवस्थायें हैं, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी॥ प्रमाण—मूलाधारात् प्रथममुदितो यस्तुतारः पराख्यः। पश्चात् पश्यन्त्यथ हृदयगो बुद्धि युङ्मध्यमाख्यः॥ वक्त्रे वैखर्य्यथ रुरुदिषोरस्यजन्तोः सुषुम्ना। बद्धस्तस्माद्भवति पवनप्रेरितो वर्णसङ्घः॥ अर्थात् किसी वचन के उच्चारण के समय प्रथम वायु मूलाधार से उठकर जबतक हृदय तक पहुंचताहै तबतक उस शब्द

का नाम परा है, पश्चात् जब वही शब्द हृदयतक पहुंच जाताहै तब उसका नाम पश्यन्ती कहाजाताहै, और जब वही शब्द हृदय से चलकर कण्ठ में पहुंच बुद्धि से युक्त होताहै औ यह विचार होने लगताहै कि इसको कहूं वा न कहूं तब उसका नाम मध्यमा कहलाताहै। फिर वही शब्द रोनेवाले जन्तु की सुषुम्ना नाड़ी से बद्ध होकर नासिका में एक प्रकार की गुदगुदी देतेहुए मुंह में आताहै तब वैखरी कहाजाता है, यहांही से वह शब्द वायु द्वारा प्रेरित होकर वर्ण बनताहै औ उच्चारण होने लगताहै, अब इन चारों दशाओं को ओंकार के चारों मात्राओं के साथ किस प्रकार सम्बन्ध है वर्णन कियाजाताहै।

वैखरी का, अकार मात्रा, जाग्रत् अवस्था, औ नेत्र स्थान, है। मध्यमा का, उकार मात्रा, स्वप्नावस्था, औ कण्ठ स्थान, है। पश्यन्ती का, मकार मात्रा, सुषुप्ति अवस्था, औ हृदय स्थान, है। परा का, अर्द्धमात्रा, तुर्य्यावस्था, औ मूलाधार से हृदयतक स्थान, है। अब जानना चाहिये कि चारों वेद, छवों शास्त्र, अठारहों पुराण, इत्यादि जो कुछ शब्द ब्रह्म हैं सब उक्तप्रकार की वाणी से ग्रथित है, तथाच "सर्वेषां वेदानां वागेकायनम्"

औ "वागेवं नामनो भूअसि" इत्यादि श्रुतिओं के प्रमाण से उक्त चारों प्रकार की वाणीही से वेद, पुराण फिर सर्व देश देशान्तरों की भाषा, औ पशु पक्षियों की बोली, बनरही है औ पूर्व में वारम्बार कह आये हैं कि ये सब ॐकार के वाच्य हैं, इसकारण यह ॐकार शब्द-ब्रह्म सिद्ध हुआ, फिर "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति" अर्थात् जो प्राणी शब्दब्रह्म में पूर्ण है वह परब्रह्म को प्राप्त होताहै, अतएव इस ॐकार का नाम परब्रह्म है, इति ॥

भिन्न २ उपनिषदों से ॐकार की मीमांसा ।

प्रिय पाठकगण को ज्ञात हुआ होगा कि इस पुस्तक में माण्डूक्योपनिषद् द्वारा इस ॐकार का महत्त्व पूर्व में वर्णन हो आयाहै इसलिये माण्डूक्य को छोड़ और कई दूसरे उपनिषदों में जो ॐकार के महत्त्व पाये जातेहैं इस स्थान में उनका विचार किया जाताहै ॥

प्रथम कठवल्ली उपनिषद्गत प्रणव विचार ।

उद्दालक ऋषि का पुत्र नचिकेता अपने आचार्य (मृत्यु वा यमराज) से आत्मविचार के निमित्त प्रश्न करताहै कि हे आचार्य्य वह कौनसा सुलभ साधन है जिसके द्वारा यह जीव भवसागर के घोर दुःखों से पार होकर शीघ्र परमपद को लाभ करे? यम उत्तर देतेहैं कि हे शिष्य श्रवण कर ।

ॐ सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति तत्तेपदᳪ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्यतत् ॥ एतदालम्बनᳪ श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १५, १६, १७ ॥

अर्थात् "सर्वेवेदाइति" ऋग, यजुः, साम, अथर्व, ये चारों वेद जिसपद को एक निश्चय औ एक मत से मोक्ष का साधन प्रतिपादन करतेहैं औ 'तपाᳪसि सर्वाणीति' जिस की प्राप्ति के अर्थ सर्व विद्वान तप का अर्थात् स्वधर्मानुष्ठान की मीमांसा वा विचार एकाग्र चित होकर करतेहैं अथवा सर्वप्रकार के तपकरने वाले तपस्वी जिसकी महिमा वर्णन करतेहैं और 'यदिच्छन्त इति' जिसकी इच्छा से गुरुकुल में निवासकर ब्रह्मचर्य्य धारण करतेहैं 'तत्तेपदं संग्रहेण इति' सो हे नचिकेत तेरेलिये मैं संक्षिप्त करके कहताहूं कि वह पद ॐकारही है, अर्थात जिस पद की तू इच्छा करताहै उसको प्राप्ति करानेवाला सर्वो-

त्तम प्रतीक यह ओँकारही है, फिर 'एतद्ध्येवाक्षरं-ब्रह्मेति' यही ओँकार एकाक्षर ब्रह्म है औ परमश्रेष्ठ है, इसकारण 'एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वेति' इस इतने अक्षर को जानकर जो जिस तत्त्व की इच्छा करताहै वह अवश्य उस तत्त्व को प्राप्त होजाताहै। इसीकारण यह ओँकार सब मंत्रों के आदि में आताहै औ सब मंत्रों का बीज औ प्राण है, इसकारण हे नचि-केत 'एतदालम्बन इति' इसी का आलम्बन और सब आलम्बनों से श्रेष्ठ है, औ इसी की उपासना परम उपासना सर्वप्रकार की उपासनाओं में उत्तम औ प्रशंसनीये है, इसकारण 'एतदालम्बनं कृत्वेति' इस का आलम्बन करके प्राणी ब्रह्मलोक को प्राप्त हो महिमा को पाता है अर्थात् ब्रह्मा के समान पदवी को पाता है, औ जो मोक्ष की इच्छा करता है वह ब्रह्म में लीन हो परमपद को पाताहै, इसकारण ब्रह्मप्राप्ति के लिये इस ओँकार से बढ़कर दूसरी कोई उपासना नहीं ॥ इति ॥

प्रश्नोपनिषद्गत प्रणवविचार ।

सत्यकाम नामक ऋषि ने अपने आचार्य्य पिप्पलाद ऋषि से जाकर पूछा कि हे गुरो—

'स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति' ॥ तस्मै सहोवाच ।

जो पुरुष निश्चय करके अपने अन्तकाल तक अर्थात् प्राण पयान होने तक इन्द्रियों को वशीभूत कियेहुए एक ॐकारही का ध्यान करताहै वह स्वर्गादि अनेक दिव्यलोकों में से किस लोक को प्राप्त करताहै कृपाकर कहो, इस प्रश्न को श्रवण कर पिप्पलाद उत्तर देतेहैं कि हे शिष्य—

'एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवाऽऽयतनेनैकतरमन्वेति' ॥

यह जो पर * औ अपर ब्रह्म है सो ॐकारही है, अर्थात्

---

* अधिक देशावृत्तित्वं परम्, अल्पदेशावृत्तित्वं अपरम् ।

से अर्थात् हिरण्यगर्भ * ब्रह्मा के लोक से श्रेष्ठ परमात्मनामक पुरिशय † अर्थात् पुरुषको प्राप्त हो 'सोहमस्मि' भाव का आनन्द लूटतेहुए परब्रह्म में लय होजाताहै इति ॥

मुण्डकोपनिषद्गतप्रणवविचार ।

प्रियपाठकगण एकाग्रचित्त होकर इस मुण्डक उपनिषत् के द्वितीय मुण्डकगत द्वितीय खंड के चतुर्थ मंत्र को भली भांति विचारेंगे ॥

ॐ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म-तल्लक्ष्य मुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

अर्थात् प्रणव धनुषहै, आत्मा बाण है, लक्ष्य अर्थात् वेधने योग्य पदार्थ यह परब्रह्महै, इसकारण

---

* जीवघन=सर्व सूक्ष्मशरीरों की समष्टतारूप हिरण्यगर्भ है इसकारण इसको सर्वोत्कृष्ट जीवघन कहतेहैं ।

† पुरिशय=जो सर्व शरीररूप पुरियों में स्थितहै, अथवा शरीर गत पुरीतति नाड़ी विषे स्थित है उसको पुरुष वा पुरिशय कहतेहैं ।

वह ब्रह्मलोक में प्राप्त हो ब्रह्मा द्वारा अपने लक्ष्य को अर्थात् इष्टपदार्थ को पावताहै, एवम्प्रकार जब पिप्पलाद ऋषि ने कहा तब सत्यकाम परम प्रसन्नता को प्राप्त हो पूछता भया कि हे गुरो जो प्राणी इस ॐकार के केवल प्रथम अक्षर अकार की उपासना करताहै औ जो अ, उ दो अक्षरों की उपासना करताहै औ जो अ, उ, म, तीनों अक्षरों की उपासना करताहै, इन तीनों प्रकार की उपासना करनेवालों की क्या भिन्न २ गति होती है विलग २ कर कथन कीजिये तब पिप्पलाद फिर बोले कि हे शिष्य—

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभि सम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धयासम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ (पांचवें प्रश्न की तीसरी श्रुति)

जो प्राणी ॐकार की पूर्णमात्राओं की उपासना न करके केवल एक मात्रा अकार ही की खण्ड उपासना करताहै वह प्राणी उसी ऋग्वेद * सम्बन्धी अकार मात्रा की

* अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्च प्रजापतिः । वेदत्रयान्निरदुहत भूर्भुवः स्वरितीतिच ॥ इस प्रमाण से तीनों अक्षरों को तीनों वेद से सम्बन्ध है ।

उपासना के महत्व से किसीप्रकार की दुर्गति को न प्राप्त हो। फिर शीघ्र ही पृथ्वीमण्डल में आ जाग्रत अवस्था के साक्षी रहने के कारण मनुष्ययोनि में 'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोभिजायते' गीता के प्रमाण से, पवित्र धनवान वर्णत्रयों के कुल में जन्मलेताहै फिर तपकरके अर्थात् अपने आश्रम औ वर्ण के धर्मों का आचरण करके ब्रह्मचर्य्य से औ श्रद्धा से सम्पन्न होकर महिमा को पावताहै, महिमा का स्वरूप छान्दोग्योपनिषत् में यों लिखाहै 'गो अश्व मिहमहिमेत्याचक्षते हस्ती हिरण्यं दास भार्य्यां क्षेत्राण्यायतनानीति' अर्थात् गऊ, घोड़े, हस्ती, इत्यादि पशु औ हिरण्य अर्थात् सोना, रूपा इत्यादि धन, दास, दासी इत्यादि सेवक औ सुन्दर रूपवती सुशीला भार्य्या सहित पुत्र पौत्र आदि कुटुम्ब औ क्षेत्र अर्थात् राज्य औ आयतनानि अर्थात् स्वच्छ मकान, कोठे, महल, अटारी, दुर्ग, बाग़, बग़ीचे इत्यादि इन सब पदार्थों को महिमा कहतेहैं, सो ॐकार का एकमात्रिक उपासना करनेवाला पाताहै।

अब दो मात्रा की उपासना करनेवाले की गति श्रवण करो।

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि संपद्यते

सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ (पांचवें प्रश्न की चौथी श्रुति)

अर्थात् जो पुरुष दोमात्रा अ, ऊ, कीही उपासना करताहै वह यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकार की उपासना के कारण चन्द्रलोक में जो मृत्युलोक की अपेक्षा कुछ उत्तमहै प्राप्त होकर चन्द्रलोक की महिमा को पाताहै अर्थात् चन्द्रलोक सम्बन्धी सर्वप्रकार के सुखों को अनुभव कर फिर इस मृत्युलोक में प्राप्त होताहै।

अब जो प्राणी पूर्ण तीनों मात्रा की उपासना औ जप करताहै उसकी गति श्रवण करो।

ॐ यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परंपुरुष मभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं

पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ (पांचवें प्रश्न की पांचवीं श्रुति)

अर्थात् जो इस ॐकार को तीनमात्रा से उपासना करताहै अर्थात इस (ॐ) के द्वारा इसके लक्ष्य परमपुरुष का ध्यान करता है वह देहत्याग के पश्चात् तेजोमय होताहुआ ज्योतिस्स्वरुप सूर्य में प्राप्त होकर दिव्यरूप में स्थित रहताहै, जैसे दोमात्रा का उपासक चन्द्रलोक के सुखों को भोगकर फिर मृत्युलोक को लौट आताहै तैसे यह तीनमात्रा का उपासक लौटता नहीं, किन्तु सूर्यलोकही में देवरूप हो निवास करताहै और 'यथापादोदरस्त्वचा इति' जैसे (पादोदर) सर्प अपनी पुरानी त्वचा को छोड़ फिर उसको ग्रहण नहीं करता तैसे यह त्रिमात्रिक उपासक इसलोक सम्बन्धी अपने पूर्व मनुष्यशरीर से मुक्त हो फिर ग्रहण नहीं करता, किन्तु सदा सूर्यलोक ही में निवासकरताहै फिर 'स सामभिरुन्नीयतेब्रह्मलोकं' वह प्राणी सामवेद सम्बन्धी तीसरीमात्रा के प्रभाव से और भी उच्चगति पाताहुआ ब्रह्मा के सत्यलोक को प्राप्त होताहै फिर 'स एतस्माज्जीवघनादिति' वह प्राणी इस जीवघन

से अर्थात् हिरण्यगर्भ * ब्रह्मा के लोक से श्रेष्ठ परमात्मनामक पुरिशय † अर्थात् पुरुषको प्राप्त हो 'सोऽहमस्मि' भाव का आनन्द लूटतेहुए परब्रह्म में लय होजाते हैं इति ॥

मुण्डकोपनिषदुक्तप्रणवविचार ।

अब पाठकगण एकाग्रचित्त होकर इस मुण्डक उपनिषद् के द्वितीय मुण्डकगत द्वितीय खंड के चतुर्थ मंत्र को भली भांति विचारें ॥

ॐ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

अर्थात् प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है, लक्ष्य अर्थात् बेधने योग्य पदार्थ वह परब्रह्म है, इसकारण

---

* जीवघन=सर्व सूक्ष्मशरीरों की समष्टि का नाम हिरण्यगर्भ है इसकारण इसको सर्वोत्कृष्ट जीवघन कहते हैं ।

† पुरिशय=जो सर्व शरीररूप पुरियों में स्थित है, अथवा शरीर नाम पुरी का है तिस में स्थित है उसको पुरुष वा पुरिशय कहते हैं ।

इस आत्मारूप बाण को ॐकाररूप धनुष पर चढ़ा कर ब्रह्मरूप लक्ष्य को वेधन करे अर्थात् जैसे निशाना लगानेवाला चित्त को सर्वत्र से रोक अपने लक्ष्य पर ध्यान लगाताहै उसीप्रकार प्रणवोपासक अपनी सर्व प्रकार की वृत्तियों को सर्वत्र से रोक इन्द्रियों को दमन कियेहुए एकाग्रचित्त औ अप्रमत्त हो अर्थात् सर्वप्रकार के प्रपञ्चरूप प्रमाद से शान्त हो अपने लक्ष्य परब्रह्म को वेधताहुआ तन्मय होजाताहै अर्थात् जिसप्रकार शर अपने वेधेहुए पदार्थ के साथ मिल जाताहै ऐसे यह आत्मा रूप बाण अपने वेधेहुए पदार्थ परब्रह्मरूप में जामिलता है, फिर जैसे बाण जब धनुष को छोड़ अपने लक्ष्य की ओर धावताहै तब दायें बायें किसी भी पदार्थ को नहीं देखता उसी प्रकार जब यह आत्मा प्रणवरूप धनुष द्वारा चलताहै तब किसी भी सांसारिक व्यवहार की ओर नहीं देखता हुआ एकदम अपने लक्ष्य ब्रह्म में तन्मय होजाताहै, यदि यह शंका हो कि बाण अपने लक्ष्य में मिलतो जाताहै किन्तु विजाति होनेसे अर्थात् लक्ष्य के समान आकारवाला न होने से तन्मय नहीं होता तो उत्तर यह है कि 'शरवत्तन्मयोभवेत्' शर का अर्थ जल भी है तो जिसप्रकार शर का अर्थात् वर्फ़ के टुकड़े का

गुलेल बनाकर धनुष द्वारा किसी नदी में पानी की ओर छोड़ें तो वह बर्फ़ का गुलेल पानी में जाकर स्वजाति होने के कारण तन्मय होजाता है इसीप्रकार आत्मा औ परमात्मा के स्वजाति होने के कारण आत्मा रूप बर्फ़ का गुलेल परमात्मारूप जल में तन्मय होजाता है इसकारण 'ॐकार मित्येवध्यायथ' ॐ इस अक्षर का ध्यान करो यह बार बार वेद ने पुकारा है इति ॥

छान्दोग्योपनिषद्गतप्रणवविचार ।

सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषत् में विराट के अंग प्राण औ आदित्य इत्यादि अनेक सगुण प्रतीकों के द्वारा परब्रह्म की उपासना कथन कीगई है तिनको यहां न कहकर सर्वोपरि जो ॐकाररूप प्रतीक अर्थात् परब्रह्मकी प्रतिमा उसके रसतमत्व को अर्थात् सर्व प्रकार के रसों में सार रस होने को दिखलाकर उसकी उपासना वर्णन करते हैं ।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ।
ओमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ।

अर्थात् ॐ यह इतना अक्षर जो उद्गीथ * है उसे उपासना करो, जैसे शालग्रामादि प्रतिमा में विष्णु का प्रतीक समझ विष्णु बुद्धिकर तिसकी पूजादि कर के श्यामसुन्दर वैकुण्ठनाथ का ध्यानधर उपासक उन को प्राप्त होताहै, उसीप्रकार यह ॐकार रूप प्रतीक अर्थात् प्रतिमा उस जगदीश्वर की है जिसकी उपासना प्राणीमात्र को कर्तव्यहै अर्थात् इस ॐकार के जप रूप से, अथवा ध्वनीरूप से, अथवा आकारादि मात्राओं के विचाररूप से, अथवा मात्राओं को एकदूसरे में लयचिन्तवन करतेहुए तादात्म्य निर्विकल्परूप से, उपासना करनीचाहिये, फिर सर्व वेदों के गानेवाले ॐकार को गानकरते हैं और जो कुछ श्रेष्ठपना महत्त्व विभूति इत्यादि फल है सब ॐकार का उपव्याख्यान है, इसलिये अब इस ॐकार की सर्वोत्तमता का वर्णन करतेहैं ।

ॐ एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपो रसः अपामोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच

---

* सामवेदका उद्गाता अर्थात् गान करनेवाला ऋत्विक् यज्ञादि में इस ॐकार को गान करताहै इसकारण इसको उद्गीथ कहतेहैं ।

ऋग्रस ऋचः साम साम्न उद्गीथोरसः। स एष रसाना ँ रसतमः परमः पराद्ध्यों ऽष्टमो यदुद्गीथः ॥

अर्थात् 'एषांभूतानांपृथिवीरसः' इन सब चराचर भूतों का पृथ्वी रस * है अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति, संहार का कारण है, फिर 'पृथिव्या आपोरसः' ऐसी पृथ्वी का जल रस है अर्थात् कारण है 'अद्भ्यःपृथ्वी' इस वेदवचन से फिर 'अपामोषधयोरसः' इस जल का रस औषध है, इस स्थान में यदि शंका हो कि रस का अर्थ तो तुमने कारण बताया है, किन्तु औषध रस का किसी प्रकार भी कारण नहीं होसकता फिर तुम औषधि को जल का रस क्यों बतलाते हो, इस शंका के निवारणार्थ यह उत्तर है कि रस शब्द का अर्थ कारणपरत्व औ सार परत्व भी है, इसलिये 'पृथिव्या आपोरसः' तक कारणपरत्व है औ इस से आगे सारपरत्व है, इसकारण कहा कि जल का रस अर्थात् सार औषधि है, फिर 'ओषधीनां पुरुषोरसः'

---

* रस के तीन अंग हैं, गति, परायण, अवष्टंभ, गति कहिये उत्पत्ति का कारण। पारायण कहिये स्थिति का कारण, औ अवष्टंभ कहिये नाश का कारण।

ओषधि का रस अर्थात् सार यह पुरुष अर्थात् शरीर है औ 'पुरुषस्य वाग्रसः' शरीररूप पुरुष का वचन रस है फिर 'वाचऋग्रसः' फिर वचन का ऋचा अर्थात् वेद का मंत्र रस है फिर 'ऋचःसाम' ऋचा ओं का साम रस है, 'वेदानां सामवेदोऽहम्' गीता के वचन से भी सिद्धहोताहै फिर 'साम्नःउद्गीथोरसः' सामवेद का यह उद्गीथ * अर्थात् ॐकार रस है, इसकारण यह सिद्ध हुआ कि यह ॐकार सम्पूर्ण जगत के चराचर का सारतर है अर्थात् जैसे इक्षुदण्ड का सार इक्षुरस तिसका सार गुड़, तिसका राब, तिसका शक्कर, तिसका चीनी, चीनी की मिश्री, मिश्री का कन्द, कन्द का ओला सार है इसी प्रकार ॐकार सम्पूर्ण जगत रूप इक्षुदण्ड का सारतर ओला के समान है औ उस में जो स्वादहै वही परमात्मा है, अतएव सर्व प्राणियों को इस ॐकार की उपासना करनी अति आवश्यक है। फिर यह कैसा है कि पराद्ध्यों अर्थात् परमात्मा की उपासना करने का स्थान है औ अष्टम है अर्थात् पृथिव्यादि रसों की संख्या से आठवां है, अर्थात् भूतोंका रस पृथ्वी १, तिसका जल २, तिसका

---

* पूर्व में देखलाआयेहैं कि उद्गीथ ॐकार को कहतेहैं।

औषधि ३, तिसका शरीर ४, तिसका वचन ५, वचन की ऋचा ६, ऋचा का साम ७, साम का ॐकार (उद्गीथ) ८, इसीकारण इसको रसतम कहतेहैं चारों आश्रमियों को इसके द्वारा मोक्ष साधन करना अति आवश्यक है ॥ इति ॥

तैत्तिरीयोपनिषद्गतप्रणवविचार ।

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्। ओमित्येतदनुकृति ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति। ओꣳशोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥ (अध्याय ९ श्रुति १)

अर्थात् ॐ यह ब्रह्म है इसकारण मनन करने औ उपासना करने के योग्य है, फिर ॐ यह सर्व है

अर्थात् जोकुछ चराचर जगत है सब ॐ ही है (देखो पृष्ठ ७) फिर ॐ यह अनुकरण है अर्थात् अनुकरण कहिये रक्षा औ सहायता को, सो यह ॐकार सम्पूर्ण जगत की रक्षा औ सहायता करनेवाला है, अथवा अनुकरण कहिये जिसकी आज्ञा वा आचरण के अनुसार दूसरेलोग करें, सो ॐकारही की आज्ञानुसार सबलोग कार्य्य कररहेहैं, अथवा जिसके पश्चात् सर्वप्रकार के कार्य्य कियेजावें, सो प्रसिद्ध है कि जितने कार्य्य किये जातेहैं सब के आदि में ॐकार कहलेने की आज्ञा है अर्थात् बोलना, करना, आना, जाना, लेना, देना, हवन, व्रत, स्नान, पूजा, इत्यादि जोकुछ कार्य्य हैं सब के प्रथम ॐकार का उच्चारण करलेना उचित है, इस कारण यह ॐकार अनुकृति है (ह स्म वा) प्रसिद्ध के निमित्त आताहै फिर 'अपि ओ श्रावयेति आश्रावयन्ति'. अर्थात् जब जिज्ञासु कहताहै कि कुछ सुनाओ तब कहनेवाला प्रथम ॐकारही को श्रवण कराताहै । फिर 'ओमिति सामानि गायन्ति' सामवेद के गानेवाले इस ॐकार का गान करतेहैं अर्थात् जब सामवेद गानेवाला गान करनेलगताहै तब जैसे किसी गान गानेवाले के साथ एक दूसरा पुरुष सुर का भरनेवाला आ ३, आ ३, सुर को अलापतारहताहै

इसीप्रकार सामवेद गानेवाले के साथ २ एक दूसरा ब्राह्मण ॐ उच्चारण करतारहताहै अर्थात् ॐ का प्रतिगर करतारहताहै. फिर 'ओ३ं शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति' अर्थात् ऋग्वेद का गानेवाला ऋग्वेद के शस्त्रों अर्थात् मन्त्रों को इसी ॐकार के साथ वर्णन करतारहताहै, फिर ॐ मिति अध्वर्युः प्रतिगरं गृणाति' अध्वर्यु * यज्ञ में भिन्न २ कर्मों का करनेवाला प्रतिकर्म के साथ इस ॐकार का गान करता रहताहै, फिर 'ओमिति ब्रह्मा प्रसौति' यज्ञ में जो ब्राह्मण ब्रह्मा बनकर यज्ञ के दक्षिण भाग में बैठाहुआ यज्ञ की रक्षा करताहै वह भी ॐकारही श्रवण करातारहताहै, फिर 'ओमिति अग्निहोत्रमनुजानाति' फिर अग्निहोत्र जो हवन करनेवाला वह भी इस ॐकारही की आज्ञा लेकर हवन करताहै. अर्थात जब होता कहताहै कि मैं अब हवन आरम्भ करताहूं तब उसके समीपस्थ सब ब्राह्मणों को (ॐ) ऐसा पद कहनापड़ताहै तब वह हवन करनेलगताहै । फिर 'ओमिति ब्राह्मण प्रवक्ष्यन्नाह' अर्थात् अध्ययन के समय ब्राह्मण

---

* अध्वर्यु उसको कहतेहैं जो यज्ञ के समय वेदि बनाता है कुण्ड तय्यार करताहै, पात्रों को ठीक करताहै, समिध और अग्नि इत्यादि को एकत्र करताहै ।

ॐ इतने पद को कहलेताहै । फिर 'ब्रह्मो प्राप्न-वानीति' जो प्राणी यह इच्छा करताहै कि मैं ब्रह्म को प्राप्तहोऊं तो वह भी ॐकारही का जप करताहै, फिर 'ब्रह्मैवोपाप्नोति' ब्रह्म का प्राप्त होनेवाला इस ॐकारही के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होताहै, तात्पर्य्य यह कि जोकुछ क्रियायें देना, लेना, खाना, पीना, यात्रा करना, स्नान, व्रत इत्यादि है सब को जो प्राणी ॐकार कहकर आरम्भ करताहै वह सर्वप्रकार सिद्धि को लाभ करताहै, इसकारण मनुष्यों को सदा इस ॐकारही की उपासना करनीचाहिये ।

बृहदारण्यकोपनिषद्गतप्रणवविचार ।

एक समय गार्गी ने महर्षि याज्ञवल्क्य से यों प्रश्न कियाहै कि हे भगवन् मैं ने सुनाहै कि ॐकार को ब्रह्मवेत्ता एकाक्षरब्रह्म कहतेहैं सो हे महाराज वह ब्रह्म तो सब अक्षरों से अतीत है उसको अक्षर कैसे कहतेहैं तब याज्ञवल्क्य उत्तर देतेहैं कि हे गार्गि सुनो-

'सहोवाचैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवद-न्त्यस्थूल मनण्व ह्रस्व मदीर्घ मलोहित

मस्नेह मच्छाय मतमोऽवाय्वनाकाश म-
संग मरस मगंध मचक्षु मश्रोत्र मवाग
मनोऽतेजस्क मप्राण ममुख ममात्र म-
नन्तर मवाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न
तदश्नाति कश्चन' ॥

हे गार्गि ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवेत्ता ऐसा कहते हैं कि वह जो अक्षरब्रह्म है स्थूल नहीं है यदि स्थूल नहीं तो मस्थूल अर्थात् सूक्ष्म होगा किन्तु हे गार्गि वह सूक्ष्म भी नहीं अर्थात् ह्रस्व भी नहीं यदि ह्रस्व नहीं तो दीर्घ होगा कहते हैं वह दीर्घ भी नहीं, जब न वह ह्रस्व न दीर्घ तो द्रव्यों के गुण से रहित अद्रव्य लोहितादि गुणों से युक्त होगा किन्तु लोहितादि अर्थात् रक्त पीतादि गुणों से भी रहित है, कदाचित जल के ऐसा स्नेहादि गुणवालाहो तो सोभी नहीं, यदि कहो कि जब न वह द्रव्य है न गुण है तो छायावाला होगा किन्तु वह छाया भी नहीं, यदि छाया भी नहीं तो तम होगा किन्तु वह तम भी नहीं, यदि अतम है तो वायु होगा किन्तु वायु भी नहीं तो आकाश होगा किन्तु आकाश भी नहीं तो सबका संघातहोगा अर्थात् सब के साथ होगा तो स्वरूप करके वह साथ

भी नहीं, तब रस होगा अर्थात् कटु, अम्ल तिक्त इत्यादि अथवा शृंगार वीर, करुणा, इत्यादि रस होगा किन्तु कोई रस भी नहीं. तो गंध होगा तो सो भी नहीं, तो चक्षुहोगा परन्तु चक्षु भी नहीं, तो श्रोत्र होगा, श्रोत्र भी नहीं तो वचन होगा, वचन भी नहीं तो मन होगा, मन भी नहीं, तो तेजहोगा तेज भी नहीं, तो प्राण होगा प्राण भी नहीं, तो मुखादिद्वार होगा सोभी नहीं, तो मात्रा होगा मात्रा भी नहीं, तो अन्तर होगा अन्तर भी नहीं तो बाहर होगा किन्तु बाहर भी नहीं, अर्थात् हे गार्गि उपरोक्त विषयों में यह एक भी नहीं फिर न वह भोक्ता है न भोग्य है सर्व विशेषणों से रहित निर्विशेष है, ऐसा जो परमअक्षरब्रह्म है सोही इस वर्णात्मक ॐकार का वाच्य है, इस पुस्तक में बार बार पूर्व में वर्णन करआये हैं कि वाच्य औ वाचक में भेद नहीं तो इसकारण वर्णात्मक ॐकार को भी वैसाही जानना जैसाकि उसके वाच्य को ॥

फिर यह कैसा है कि सूर्य चन्द्र, अग्नि वायु इत्यादि सब इसी की आज्ञा से अपने २ कार्य्य में नियमपूर्वक प्रवर्त्त होरहेहैं, हे गार्गि सुनो —

ॐ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने

गार्गि सूर्य्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृतेतिष्ठतः। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा ऋतवः सम्वत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्यो ऽन्या नद्यः स्पन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां यांच्च दिश मन्वेति। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं देवा दर्वी पितरोऽन्वायत्ताः॥इत्यादि॥

अर्थात् हे गार्गि इसी अक्षर की आज्ञा से सूर्य्य चन्द्र अपने २ कार्यों में स्थिर हैं, इसी अक्षर की आज्ञा से हे गार्गि द्युलोक औ पृथ्वीलोक इत्यादि स्थिर हैं, इसी अक्षर की आज्ञा से हे गार्गि पल, मुहूर्त्त, दिन रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष सब वर्तमान हैं, इसी

अक्षर की आज्ञा से हे गार्गि हिमालय पर्वत से बहुत सी नदियां निकलकर पूर्वदिशा में बहतीहैं और बहुत सी पश्चिम ओर से बहतीहुई इनमें जामिलतीहैं, इसी अक्षर की आज्ञा से दानपातेहुए मनुष्य यजमान की प्रशंसा करतेहैं औ देवता पितर सब इसी अक्षर की आज्ञा से हवि ग्रहणकरतेहैं ।

प्रिय पाठकगण को उचित है कि जो अक्षर ऐसे प्रभाववाला है उसकी अवश्य उपासना करें जिस से मोक्षपद की प्राप्ति हो ॥ इति ॥

ॐकार का जपविधान ।

विदितहोवे कि निर्विकल्पसमाधि प्राप्तहोने से पूर्वही ॐकार का जप कियाजाताहै, क्योंकि जब निर्विकल्पसमाधि की प्राप्ति होजातीहै तब उपासक उपास्य दोनों के एक होजाने से अपने स्वरूप का साक्षात्कार होजाताहै, क्योंकि निर्विकल्प समाधि प्राप्त न होने से किंचित अज्ञानता अवशिष्ट रहने के कारण अपने स्वरूप का भान नहीं होता, औ जब ॐकार एकाक्षर ब्रह्म का जप औ उपासना करते २ अपने लक्ष्य का बोध होजाताहै तब 'शरवत्तन्मयोभवेत्' तब अपने लक्ष्य में तन्मय होजानेसे अज्ञानता का नाश होकर 'तत्त्वमसि' 'अहंब्रह्मास्मि' इत्यादि का स्फुरण होने लगताहै इस कारण समाधि से पूर्वहीतक इस परम मंत्र ॐकार का जप औ उपासना उचितहै, क्योंकि इस परम मंत्र ॐकार को छोड़ अन्य कोई दूसरा मंत्र शीघ्र समाधि प्राप्तहोने के निमित्त उत्तम नहीं, यथा रामगीता-याम—पूर्वंसमाधेरखिलं विचिन्तयेदोंकार मात्रं सचराचरं जगत् । तदेव वाच्यं प्रणवोहि वाचको विभाव्यतेऽज्ञानवशान्नबोधतः ॥ अर्थात् निर्वि-

कल्पसमाधि से पूर्व संपूर्ण जगत को ॐकार रूपही जानकर इसका जप करे, इस पुस्तक में पूर्वही ॐकारएवेदंसर्वं' औ 'तस्योपव्याख्यानंभूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव' इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट देखलाआयेहैं कि यह ॐकारही सब है, इसकारण जपकरनेवाला संपूर्ण चराचर को ॐकार मात्रही चिन्तवन करे, क्योंकि ॐकार वाचक औ चराचर वाच्य में जो किंचित भेद भानहोताहै वह 'अज्ञानवशान्नबोधतः' अज्ञानता के कारणहै बोध से नहीं। इसकारण विधिपूर्वक इसका जप करे, मंत्र के अक्षरों के साथ २ उसकेअर्थ के चिन्तवन करनेही को जप कहतेहैं 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' इस पतंजलि सूत्र के प्रमाण से, अतएव इस ॐकार अक्षर के साथ २ इस के अर्थ अर्थात् इसके लक्ष्य परब्रह्मस्वरूपही का ध्यान करे, इसी को मानसजप कहतेहैं जो वाचिक औ उपांशु जपसे उत्तमकहाजाताहै (देखो वृहत्सन्ध्या पृष्ठ १३६) इसी को जपयोग भी कहतेहैं इसी से समाधि सिद्ध होजाती है, अपने इष्ट के स्वरूप का साक्षात्कार होनेलगताहै, अर्थात् अपने प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर का प्रत्यक्ष दर्शन होनेलगताहै। इसलिये प्रणव में चित्तलगावे इसी के विषे श्री स्वामी शंकराचार्य्य के गुरु स्वामी गौडपादाचार्य्य ने कहाहै कि—

युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् । प्रणवे नित्य युक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥१॥ प्रणवोह्यपरंब्रह्म प्रणवश्चपरः स्मृतः । अपूर्वो ह्यनन्तरो बाह्यो नपरः प्रणवोऽव्ययः ॥२॥ सर्वस्यप्रणवोह्यादिर्मध्यमन्तस्तथैवच । एवंहि प्रणवं ज्ञात्वा व्यश्नुते तदनन्तरम् ॥ ३ ॥ प्रणवं हीश्वरं विद्यात्सर्वस्यहृदि संस्थितम् । सर्वव्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति ॥ ४ ॥ अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः । ओंकारो विदितो येन स मुनि र्नेतरोजनः ॥ ५ ॥

अर्थ—ॐकार निर्भयरूपब्रह्म है इसकारण इस ॐकारही में चित्त को लगावे, क्योंकि जो प्राणी प्रणव के जप औ साधन में नित्य प्रवर्त है उसको किसी प्रकार का भय नहीं ॥ १ ॥ यह प्रणवही अपरब्रह्म * है औ यह प्रणवही परब्रह्म है औ अपूर्व है अर्थात् इससे पूर्व कोई वस्तु नहीं, फिर अनन्तर है अर्थात् इसको किसी विकार सविकार दोष गुण से अन्तर नहीं, फिर अवाह्य है अर्थात् इस से बाहर अन्य कोई वस्तु नहीं फिर अनपर है अर्थात् इससे परे कोई नहीं, और इस

---

* अपर औ परब्रह्म व्याख्या (देखो पृष्ठ ५५)

का नाश तीनों काल में नहीं इसकारण अव्ययहै ॥२॥ सब का आदि, मध्य, अन्त, प्रणवही है, इसकारण प्राणी इस प्रणव को जानकर तत्क्षण इसके लक्ष्य आत्मतत्त्व को प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ यह प्रणव सब के हृदय में स्थित है, सर्वव्यापी है, इसकारण इसको ईश्वर जानो, जो प्राणी एवम्प्रकार इसको मानताहै वह धीरपुरुष किसी काल में किसीप्रकार के शोक को नहीं प्राप्त होता ॥४॥ यह ॐकार अमात्रा है अर्थात् कोई पुरुष इसका मात्रा कियाचाहै कि यह इतना है सो होनहीं सकता, इसकारण अमात्राहै, फिर अनन्तमात्रा है अर्थात् यदि मात्रा कियाजावे तो जहांतक मात्राओं में बुद्धि प्रवेश करे वहांतक इसका अनन्त नहीं इस-कारण अनन्तमात्रा है, फिर द्वैत का उपशम रूप है अर्थात् जिसके यथार्थ बोध से द्वैत बुद्धि मिटकर सर्वत्र आत्मा ही आत्मा भान होनेलगताहै, फिर शिव अर्थात परम कल्याणरूप है इसकारण जिसपुरुष को यह ॐकार यथार्थ रूप से विदितहुआ वही मुनि है, अर्थात् मननशील परम तत्त्व का यथार्थ मनन करने वाला है ॥ ५ ॥

अब इसस्थान में प्रणव के जपकरने की भिन्न २ रीति मिला २ कर वर्णन कीजातीहै, जिस साधक से

अपने अधिकार औ अवकाशानुसार जौन सधसके वह इसी रीति के अनुसार इसका जप औ उपासना करे।

पहली रीति—विधिपूर्वक सन्ध्या करने के पश्चात् कुछदेर तक स्थिर हो शरीर के परिश्रम को थोड़ा दूरकर फिर सिद्धासन लगा त्राटक करतेहुए नासाग्र अवलोकन करे, पांच अथवा सात मिनट नासाग्र अवलोकन करने पर पुतलियों को भ्रूमध्य * में भीतर की ओर प्रवेश कियेहुए जिह्वा को थोड़ी टेढ़ीकर तालू से लगा दांतों से विलग किये ॐकार का मानसिकजप करताजावे। जिस समय सिद्धासन में चिबुक (ठुड्ढी) हृदय की गहड़ाई से चार अंगुल ऊपर लगायाजावेगा औ होंठ से होंठ आमिलेगा आप से आप ऊपरवाले दांत निचले दांतों से अलग हो जावेंगे औ मुंह में ॐकार का स्वरूप बनजावेगा इसी पर साधक को ध्यानरखना होगा, थोड़े दिनों तक ऐसा अभ्यास करते २ बिना होंठ औ जिह्वा के हिले आप से आप ॐकार उच्चारण होताहुआ जानपड़ेगा इसीकारण इसको अजपाजाप भी कहतेहैं (इस क्रिया को स्पष्टरूप से गुरुद्वारा जानलेना)।

---

* पुतलियों को भ्रमध्य के भीतर लेजाने की रीति देखो त्रिकुटीविलास भाग २।

दूसरीरीति—जिसप्रकार सुखहोवे उसी प्रकार बैठकर चित्तवृत्ति को रोक विद्या औ अविद्या दोनों के कार्य्यों को छोड़ मुहूर्त्तमात्र स्थिर हो अपने श्वास पर मनलगावे, जैसे २ श्वास ऊपर नीचे आवे जावे अपने मन को उसकी चालपर टिकायेरहे, फिर ऊपर चढ़नेके समय (अ) रुकजाने के समय (ऊ) औ नीचे उतरने के समय (म) अक्षरों का श्वासकी चाल के साथ २ मानों मानसिक उच्चारण करताजावे अर्थात् श्वास प्रतिश्वास ॐकार का जप करे, कुछ दिन ऐसे अभ्यास होजाने से दिनरात में चलनेवाले २१६०० श्वास के साथ २१६०० ॐकार के जपका फल होगा, मानों शरीर के रोम २, नाड़ी २, हड्डी २, अङ्ग २ माला अर्थात् जपवटी बनजावेगी, ऐसे शरीर का क्या कहना (गुरुद्वारा जानना) ॥ इति ।

तीसरीरीति—मूलद्वार को आकुंचन कर अर्थात् मूलबंध * लगा मूलद्वार से उठतेहुए वायु के साथ (ओ ३) प्लुत का उच्चारण पूर्ण स्वर से अर्थात् ऊंचस्वर से करे जबतक दम न फूले ऊंचेस्वर से (ओ३)

* मूलबंध का वर्णन देखो त्रिकुटीविलास भाग २ पृष्ठ ४१ ।

कहतारहे, जब दमफूलने के समीप आजावे तो (म्) कहताहुआ होठों को बन्द कर शब्द को थोड़ा मन्द करतेहुए अमात्रा (ँ) को स्पष्ट शब्द के साथ ब्रह्मरन्ध्र तक चोट लगने देवे, अर्थात् जिसप्रकार बड़े घंटे का शब्द प्रथम ऊंचे स्वर से उच्चारण होताहै फिर धीरे २ मन्द होताहुआ लय होजाताहै, उसी प्रकार (ओ ३) अत्यन्त ऊंचे स्वर से उच्चारणहो (म्, मन्द स्वर होताहुआ धीरे २ ब्रह्मरन्ध्र में लय होजावे ; गुरुद्वारा जानलेना) ॥ इति ॥

चौथी रीति—चारों ओर से मेंढ़ को बांधकर अर्थात् चारों ओर से शरीर को सिमटकर वायु की चाल को रोकेहुए दोनों मुष्टिकाओं को दृढ़ बांधेहुए श्वासरोकेहुए भीतर ही भीतर बिना शब्द उच्चारण किये (ओ ३ म्) को जपताहुआ इतनी देरतक ठहरे जबतक दम न फूले, जब दम फूलजावे श्वास को धीरे २ रेचक करदे, फिर जब श्वास स्थिर होजावे उसीप्रकार करे, एवम्प्रकार बारबार करने से धीरे २ वृत्तियां स्थिर होजावेंगी औ तुरीयपद की प्राप्ति होने-लगेगी ॥ (गुरुद्वारा जानना) ॥

पांचवीं रीति—चतुर्दलपद्म से लेकर

सहस्रदल पर्यन्त प्रत्येक चक्रों का ध्यान करतेहुए ॐकार का मानसिक जप करना, इसकी विधि यों है कि निचले चक्र से (ओ ३) आरंभकर ऊपरवाले चक्र में (म्) कहकर समाप्तकरना, ऐसेही प्रत्येक चक्र होतेहुए शून्यचक्र (सहस्रदलपद्म) तक पहुंचजाना, जैसे चतुर्दल का ध्यान कर (ओ ३) का मानसिक उच्चारण करतेहुए (षड्दल) में (म्) कहतेहुए समाप्त करना, फिर (षड्दल) से (ओ ३) आरंभकरना औ (दशदल) में (म्) कहकर समाप्त करना, एवम्-प्रकार एकचक्र पर (ओ ३) प्लुत, दूसरे पर (म्) हल मानसिक जप की रीति से कहतेजाना. और जब तक चक्रों पर (ओ ३) अथवा (म्) समाप्त होवे तबतक उन चक्रों के दल, * रंग, बीज, वाहन, देवता, देवी, इत्यादि का पूर्ण ध्यानकरना, जब ऐसे करतेहुए वृत्ति सहस्रदल में पहुंचजावे तब वहां कुछ देर ठहरकर अपने इष्टदेव का ध्यानकरना, फिर धीरे धीरे श्वास को संभाललेना (गुरुद्वारा जानना) ।

छठवीं रीति—केवल रेचक में ॐकार

* दल, रंग, बीज, वाहन इत्यादि का ध्यान पूर्णरीति से चित्रबनाकर श्री स्वामिहंसस्वरूपकृत "षट्चक्रनिरूपणमूर्त्ति" में देखलायाहुआहै देखलेना ।

का श्वास के साथ जपकरना, अर्थात स्थिर हो सर्व-प्रकार की चिन्ता को दूरकर श्वास को बाहर निकालते-हुए ॐकार की मानसिकध्वनि तबतक करतेजाना जबतक नाभी पीठ की ओर सटतीहुई चलीजावे, फिर धीरे २ नाभी को उठा अर्थात् अपने स्थानतक ला वैसाही करना, अर्थात् उड्डियानबंध से ॐकार का जपकरना। प्रियपाठकगण को ध्यानरहे कि मूल, जा-लंधर, उड्डियान, इन तीनों बन्धों से ॐकार का जप भिन्न २ होसकताहै (गुरुद्वारा जानना) इन तीनों बन्धों का वर्णन 'प्राणायामविधि पृष्ठ ४० से ४२ तक' में पूर्ण रीती से कियागयाहै देखलेना।

सातवीं रीति—किसी दीवालपर सामने (ॐ) लिखछोड़ना, अथवा (ॐ) का चित्र यदि मिलजावे तो सामने दीवालपर लटकादेना, और उस-की बिन्दु पर एकटक आंखों को लगा बिना पलकों के गिराये उतनी देर तक देखतेरहना जब तक कि आखों में आंसू भरआवे और इतनी देर जो श्वासो-च्छ्वास होवे अर्थात् श्वास भीतर जावे औ बाहर आवे उस प्रत्येक श्वास की चाल के साथ ॐकार का जप करताजावे (गुरुद्वारा जानना)।

आठवीं रीति ।

अनाहतध्वनिश्रवण करनेवाले यन्त्र से, यदि यन्त्र न मिले तो केवल हाथों की अंगुलियों से दोनों कानों के रन्ध्रों को बन्दकर बलपूर्वक दबायेहुए सर्व प्रकार की वृत्तियों को रोक एकाग्रचित्त से दाहिने कान की ओर अनाहतध्वनि श्रवणकरे, जब दो चार प्रकार के शब्द सुनपड़ें तब उनहीं शब्दों में ॐकार का धुन होताहुआ ध्यानकरे, एवम्प्रकार ध्यान करते २ थोड़े दिनों के पश्चात् ॐकार आप से आप स्पष्टरूप से सुन पड़ेगा, जब एवम्प्रकार ॐकार स्पष्टरूप से सुनपड़े तब अपनी चित्तवृत्ति को दिन रात, चलते, फिरते खाते पीते, उठते बैठते सब दशा में उसी ॐकार की ओर लगायेरहे, थोड़े दिनों के पश्चात् एकदम तुरीय अवस्था प्राप्ति होजावेगी औ ब्रह्मानन्द लाभहोनेलगेगा इसीको शून्यसमाधि, राजयोग, औ अजपाजाप, भी कहतेहैं ।

नवींरीति—रुद्राक्ष, स्फटिक, कमलाक्ष, तुलसी इत्यादि की मालापर जो कमसेकम १०८ अथवा ५४ माणिकावाली हो स्पष्टरूप से वाचिक जप अथवा हौले २ उपांशुजप, अथवा मानसिक जप

ॐकार का करना यदि माला न मिले तो हाथकी अंगुलियों ही पर जपकरना, अंगुलियों पर जपनेकी रीति गुरुद्वारा जानलेना किन्तु १०८ से अधिक अंगुलियों पर जपने की आज्ञा नहीं है। यह रीति सर्व साधारण बच्चों के लिये भी विहित है।

ऊपर कथनकियेहुए नवप्रकार के जप से किसी एक को करने के पश्चात् साधक आगे लिखेहुए ॐकार माहात्म्य का पाठकरजावे।

अथ ॐकारमाहात्म्यम्।

ॐकारो वर्तुलस्तारो वामश्च हंसकारणम्।
मन्त्राद्यः प्रणवः सत्यं बिन्दुशक्तिस्त्रिदैवतम्॥ १॥
सर्वबीजोत्पादकश्च पञ्चदेवो ध्रुवस्त्रिकः।
सावित्री त्रिशिखो ब्रह्म त्रिगुणो गुणजीवकः॥ २॥
आदिबीजं वेदसारो वेदबीजमतः परम्।
पञ्चरश्मि स्त्रिकूटश्च त्रिभवे भवनाशनः॥ ३॥
गायत्रीबीज पञ्चांशौ मन्त्रविद्याप्रसूः प्रभुः।
अक्षरं मातृकासूश्चानादिदैवत गोक्षदो॥ ४॥
एकमेवाद्वयंब्रह्म माययातु चतुष्टयम्।
रोहिणीतनयोरामः अकाराक्षरसम्भवः॥ ५॥
तैजसात्मकप्रद्युम्न उकाराक्षरसम्भवः।

प्रज्ञात्मकोऽनिरुद्धोवै मकाराक्षरसम्भवः ।
अर्द्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन् विश्वं प्रतिष्ठितम् ६
विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ।
यत्प्राप्तये महापुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् ॥७॥
तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम् ।
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् ॥ ८ ॥
एतास्तिस्रः स्मृता मात्राः सात्वराजसतामसाः।
निर्गुणा योगिगम्यान्या अर्धमात्रातु सास्मृता।९।
गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया ।
पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते।१०।
यदा प्रयुक्त ॐकारः प्रतिनिर्य्याति मूर्धनि ।
तदोंकारमयो योगी अक्षरेत्वक्षरो भवेत् ॥११॥
प्रणवो धनुः शरश्चात्मा ब्रह्म वेध्यमुदाहृतम् ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ १२ ॥
ओमित्येते त्रयोदेवा स्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नयः ।
विष्णुक्रमास्त्रयश्चैव ऋक्सामानि यजूंषिच॥१३॥
मात्राश्चार्धश्चतस्त्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः ।
तत्रयुक्तश्च यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात् ॥१४॥
अकारस्तत्र भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः ।
सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते।१५।
व्यक्तातु प्रथमा मात्रा द्वितीयाऽव्यक्तसंज्ञिका ।

मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परम्पदम् ।१६।
अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः ।
ओमित्युच्चारणात् सर्व गृहीतं सदसद्भवेत् ॥१७॥
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दीर्घसंयुता ।
तृतीया तु प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा त्वगोचरे ।१८।
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ।
यस्तं वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः १९
संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः ।
प्राप्नोति ब्रह्मनिलयं परमं परमात्मनि ॥ २० ॥
अक्षीणकर्मबन्धस्तु ज्ञात्वा मृत्युमुपस्थितम् ।
उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति ।२१।
तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ।
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति २२

॥ इतिॐकारमाहात्म्यवर्णनम् ॥

टीका—ॐकार, वर्तुल (गोलाकार), तार (तारनेवाला), वाम (अत्यन्त सुन्दर वा वामदेव नाम शिव), हंसकारण (आत्मा के बोध का कारण), मन्त्राद्य, प्रणव, सत्य, बिन्दुशक्ति (सृष्टि का बीज), त्रिदैवत, सर्वजीवोत्पादक, पंचदेव, ध्रुव (अविनाशी); त्रिक (ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों का संघात), सा-

त्रिश्री, त्रिशिख (महादेव), ब्रह्म, त्रिगुण, गुणजीवक (तीनों गुणों का उत्पन्न करनेवाला), आदिबीज, वेद-सार, वेदबीज, पञ्चरश्मि (पशुपति महादेव), त्रिकूट (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, तीनों नाड़ियों का संयोगस्थान), भवनाशन, गायत्रीबीज, पञ्चांश, मन्त्रप्रसू (मन्त्र का जनक), विद्याप्रसू (विद्या का जनक), प्रभु, अक्षर (अविनाशी), मातृकाप्रसू (अक्षरों का उत्पन्न करनेवाला), अनादिदैवत, मोक्षद। इतने ॐकार के पर्य्याय शब्द हैं अर्थात् महानिर्वाणतन्त्र के मत से इस ॐकार को उपरोक्त भिन्न २ नामों से पुकारते हैं ॥ १, २, ३, ४ ॥

जो ब्रह्म एक औ अद्वय है वही माया को स्वीकार करके चार होजाताहै, वे चार ये हैं, अकार से रोहिणी के पुत्र बलराम, उकार से तैजसात्मक प्रद्युम्न, मकार से प्रज्ञावाले अर्थात् बुद्धिस्वरूपही अनिरुद्ध, औ अर्धमात्रा से स्वयं श्रीकृष्णचन्द्र जिनमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थितहै ॥ ५, ६ ॥

जो प्रभु विश्व का पाद, शिर औ ग्रीवहै, पुनः विश्व का ईश है औ जिस से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होताहै तिसकी प्राप्ति के लिये साधक महापुण्यजनक परमपवित्र इस ॐकार एकाक्षरब्रह्म का जप करे ॥७॥

फिर अकार, उकार, मकार, इन तीनों अक्षरों के श्रवण औ अध्ययन का समान फल उक्तप्रकार ही है जैसा ऊपर कथन कियाहै ॥ ८ ॥

अ, उ, म, ये तीनों मात्रा, सत्, रज, तम गुण मयी हैं और जो अर्द्धमात्रा है वह निर्गुण है औ केवल योगियोंही से जानीजाती है ॥ ९ ॥

सो अर्द्धमात्रा गान्धारी कहीजाती है क्योंकि गान्धारस्वर के आश्रय पिपीलिकागति से गान्धारी नाड़ी को स्पर्श करतीहुई मूर्द्धा अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र के छिद्र की ओर जा लगती है, जब एवम्प्रकार स्पर्श करतेहुए यह ॐकार अपनी अर्द्धमात्रा द्वारा मूर्द्धा में जा प्रवेश करताहै तब इसका साधक योगी ॐकार-मय होकर अक्षरब्रह्म में लय होकर स्वयं अक्षर अर्थात् अविनाशीरूप होजाताहै ॥ १०, ११ ॥

यह प्रणव धनुष है, आत्मा शर है, औ इसके बेधनेयोग्य पदार्थ स्वयं परब्रह्म है तिसको अप्रमत्त हो-कर अर्थात् विषयों के प्रमाद को छोड़कर बेधने से शर के समान अपने लक्ष्य में जाकर तन्मय होजाता है (देखो पृष्ठ ६२) ॥१२॥

ॐकार के तीनों अक्षर अ, उ, म, को तीनों देव, तीनों लोक, तीनों अग्नि, (देखो पृष्ठ २२) औ तीनों विष्णुपादविक्षेप *, तीनों वेद ऋग्, यजुः, साम, जान कर औ चौथी अर्द्धमात्रा को पूर्णरीति से परमार्थ साधन का हेतु जानकर जो योगी इस प्रणव में युक्त होताहै वह ब्रह्म में लीन होजाताहै ॥ १३, १४ ॥

अकार भूलोक, उकार भुवर्लोक, औ व्यञ्जन जो मकार वह स्वर्लोक है ॥१५॥ प्रथम मात्रा व्यक्ता (स्थूल जगत्), द्वितीया मात्रा अव्यक्ता (सूक्ष्मजगत्) औ तृतीया मात्रा (स्वयं चित्‌शक्ति) औ अर्द्धमात्रा (कैवल्य परमपद) है, इसी क्रम से योगभूमिका जानने योग्य हैं औ इसी के उच्चारण से सत, असत जो कुछ वस्तु तीनोंलोक में हैं जानीजाती हैं ॥ १६, १७ ॥

पहली मात्रा ह्रस्वा, दूसरी दीर्घा, तीसरी प्लुताहै औ जो अर्द्धमात्राहै वह वचन से अगोचर है अर्थात् अनिर्वचनीया है ॥ १८ ॥

---

* वामन अवतार लेकर तीन पादविक्षेप से तीनों लोकों का माप लेना, अथवा रज, सत्व, तम, तीनों गुणों से ब्रह्माण्ड की रचना करनी ।

यह जो ॐकार संज्ञक अक्षर है वह परब्रह्म है इसको जो सम्यक्प्रकार जानताहै अथवा ध्यानकरताहै वह संसारचक्र को त्यागकर तीनों बन्धनों से अर्थात् क्रियमान, सञ्चित, प्रारब्ध से छूट परब्रह्म में लीन होजाताहै ॥ १९, २० ॥

जो प्राणी कर्मबन्धन से नहीं छूटाहै वह मृत्यु को उपस्थित देखकर प्राण निकलने के समय यदि इस ॐकार को स्मरण करे तो फिर दूसरे जन्म में योगी ही होताहै, इसकारण योग सिद्धहो वा असिद्धहो जो प्राणी मृत्यु से पूर्व अरिष्टों को जानलेताहै वह मरण काल में क्लेश नहीं पाता ॥ २१, २२ ॥

इति मन्त्रप्रभाकरे प्रथमाध्याये ॐकार व्याख्यानंसमाप्तम् ।

प्राणायाममन्त्रार्थः ।

विदित होवे कि सन्ध्या के मन्त्रों में औ क्रियाओं में प्राणायाम ही मुख्य मन्त्र औ क्रिया है जिसके सिद्ध होजाने से मन की शान्ति लाभहोती है, शान्ति लाभ होतही लौकिक पारलौकिक सब मनोकामनायें सिद्ध होजाती हैं, इसी मन की शान्ति से ज्ञानियों को परम-पद लाभहोताहै औ भक्तजनों को श्यामसुन्दर के मुखार-विन्द के मन्द २ मुसकान की शोभा दृष्टिगोचर होने लगती है, प्रिय पाठकगण भलीभांति स्मरण रक्खें कि बड़े २ पर्वतों को चूर २ करडालना, समुद्र को पान करजाना, अगणित हस्ती औ घोड़ों से युक्त अक्षौहिणी की अक्षौहिणी सेना को विजय करडालना, सूर्य्य, चन्द्र को मूठी में बांधलेना, तारागणों की गणना करलेनी, सहज हो तो हो किन्तु इस विषयवनविहारी उन्मत्त गज मन का वशीभूत करना अत्यन्तही दुर्लभ है ।

बहुतेरे बुद्धिमानों को थोड़ा विचारकरने से विदित हुआहोगा कि जब किसीप्रकार का जप अथवा ध्यान करने के लिये आसनपर एकान्त बैठिये तो विशेष कर उसी समय यह मन मर्कट की नाईं नीचे ऊपर दौड़ने लगताहै, नानाप्रकार की विषयों की चिन्ता, घर के लेनदेन, व्यवहार, द्वन्द्व इत्यादि में ऐसा डूबजाताहै कि इधर जपादि की कुछ भी सुधि नहीं रहती, आप की अंगुलियां तो माला की वटिकाओं पर फिररही हैं औ मन कलकत्ते की बड़ीबाज़ार में फिररहाहै, घड़ी, छड़ी, कोट, पेंटलून, फ़ोनोग्राफ़ इत्यादि का मोलजोल कररहाहै, इतने में उधर दूकानदार से दंगे तकरार होनेलगे इधर माला हाथ से छूट पृथ्वीपर गिरी, गिर-तेही ध्यान आया कि हां! मैं कहां फिरताथा, फिर तो बड़ी ग्लानि आई, लज्जा प्राप्त हुई, क्रोध भी उत्पन्न होआया कि इस दुष्ट मन ने मेरा घंटा आधघंटा समय व्यर्थ गंवादिया, इसकारण इस मन को एकाग्रकरना मुख्य कार्य्य है सो केवल प्राणायाम ही से होताहै, हठ हो अथवा राजयोग करके हो, अगर्भ हो वा सगर्भ हो, गुरु से जिसप्रकार लाभ हुआहो प्राणायाम ही का अभ्यास करे, इसीकारण सन्ध्या में यह क्रिया मुख्य रखीगई कि बचपन से अर्थात् ब्रह्मचर्य्य अवस्था

ही से जब इसका अभ्यास होरहेगा तो युवा अथवा गृहस्थ होते २ चित्त की शान्ति प्राप्ति होगी, फिर तो आनन्दपूर्वक गृहस्थाश्रम का धर्म पालन करतेहुए ब्रह्मानन्द को लाभकरेगा।

इसी प्राणायाममन्त्र के मध्य में परमशक्ति गायत्री विराजमान होरही है जो वेदों की माता है औ अपने उपासकों की सर्व मनोकामनाओं को सिद्ध करनेवाली है अतएव इस प्राणायाममन्त्र का अर्थ उपासकों के कल्याण निमित्त कियाजाताहै।

प्राणायाममन्त्रः—

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्। ओं तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात्॥ ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥

तै० प्र० १० अ० १७।

इस मन्त्र में तीनखंड हैं, तीनों का अर्थ विलग विलग कियाजाताहै।

प्रथमखण्ड सप्तव्याहृति=ॐ भूः । ॐ भुवः । ॐ स्वः । ॐ महः । ॐ जनः । ॐ तपः । ॐ सत्यम् ।

द्वितीयखण्ड गायत्री=ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ।

तृतीयखण्ड शीर्ष=ओमापो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ।

सप्तव्याहृतिमन्त्रार्थः ।

देखाजाताहै कि प्राणायाममन्त्र उच्चारण के समय इन सातों व्याहृतियों के साथ ॐकार लगातेहैं, इसका तात्पर्य्य यह है कि इन सातों व्याहृतियों से जो भूर्लोक, भुवर्लोक इत्यादि सातोंलोक ऊपर के औ उपलक्षण करके अतल, वितल इत्यादि सातोंलोक नीचे के समझेजातेहैं इन चौदहों लोकों में जितनी रचना है औ जितने जीव, जन्तु, देवता, देवी इत्यादि हैं सब ॐकारब्रह्म से व्याप्त हैं क्योंकि ये सब ॐकारही से उत्पन्न हैं, यह बार २ ॐकार की व्याख्या में देखला आयेहैं । अथवा ॐकार का अर्थ अङ्गीकार भी है इसलिये सन्ध्या करनेवाला मानों यही प्रार्थनाकरताहै कि "भूर्लोकाभिमानिनी देवता मत्कृतमाह्निकं कर्माङ्गीकरोतु" अर्थात् भूर्लोकाभिमानी देवता मुझ

सन्ध्या करनेवाले की क्रियाओं को अङ्गीकार करे औ उसका साक्षी होवे, इसीप्रकार भुवः, स्वः इत्यादि लोकाभिमानिनी देवताओं से उपासक की उक्त प्रार्थना समझनी चाहिये ॥ अब अर्थ सुनिये ॥

ॐ भूः—(भू धातु से क्विप् प्रत्ययकरने से भूः बना है) इसलिये जिस से सर्व भूतों की उत्पत्ति हो उसे भूः कहतेहैं, फिर "भूतिवरत्वाद्भूः" श्रेष्ठ ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण भी भूः कहतेहैं, फिर "यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यस्मिन् प्रयन्त्यभिसम्विशन्ति" इस श्रुति के प्रमाण से जिस से सर्व जीव उत्पन्न हों, पालन कियेजावें और फिर उसी में लय होजावें इसलिये 'लक्ष्मीपतित्वाद्भूः' औ 'निरवधिकैश्वर्य्ययुक्तत्वाद्भूः' लक्ष्मीपति होने से औ अनन्त ऐश्वर्य्ययुक्त होने से भूः। तात्पर्य्य यह कि स्वयं परमात्माही का नाम है भूः। फिर भूर्लोकाभिमानी देवता को अथवा स्वयं भूर्लोक को भी कहिये भूः। ये सब मेरी प्राणायाम क्रिया की सहायता करें ॥ इति ॥

ॐ भुवः—(अन्तर्भावितण्यर्थादसुनिगुणाभावश्छान्दसः) अन्तर्भावितण्यर्थक भू धातु से असु

प्रत्यय होकर छान्दस होने के कारण गुण का अभाव होने से भवः न होकर भुवः हुआ है। इसलिये "भावयनि स्थापयति विश्वमिति भुवः" जो विश्व को स्थापन करे वह भुवः। अथवा अन्तर्ण्यर्थक भू धातु से क प्रत्यय करनेही से भुवः हुआ इसलिये जो जगदुत्पत्ति का प्रेरक हो वह भुवः। अथवा इस जगत में जो होवे उसे कहिये भू तिस से जो वर कहिये श्रेष्ठ अर्थात् भूवर जो लक्ष्मीश्वर स्वयं परमेश्वर, इस शब्द में भुवर से भुवः हुआ छान्दस प्रयोग होने के कारण ऊकार का ह्रस्व होकर भुवः रहा, फिर "अनन्त सुखस्वरूपत्वाद्भुवः" अनन्त सुख स्वरूप होने से भुवः स्वयं परमात्मा, अथवा भुवर्लोकाभिमानिनी देवता वा स्वयं भुवर्लोक। ये सब मेरी क्रिया सफल करें।

ॐ स्वः—'स्वः सुवो वा' अर्थात यह पद 'स्वः' भी है औ 'सुवर' अथवा 'सुवः' भी है। स्वः शब्द सुखवाची है यह प्रसिद्ध है। यदि 'सुवर' होवे तो (सु) सुन्दुप्रकार से जो (वर) वरणीय अर्थात् श्रेष्ठ होवे वह 'सुवर' तिससे होताहै 'सुवः'।

प्रमाण—स्विरत्यानन्दः समुद्दिष्टो वरीति ज्ञानमुच्यते
मुक्तिदानेन तद्दानात्सुवरस्य पदद्वयम्।

अर्थात् (सु) कहिये आनन्द औ (वर) कहिये ज्ञान को

इसकारण आनन्द औ ज्ञान अथवा आनन्दमय ज्ञान, अथवा ज्ञानानन्द (मुक्ति) उसे जो देवे उसीको सुवर, सुवः अथवा स्वः कहतेहैं, अथवा आनन्द औ ज्ञानरूप जो होवे वह 'सुवर'। अथवा "भगवद्दक्षिणसव्य-पादयोरानन्दज्ञानरूपत्वात् तत्पादभजकानामा-नन्दज्ञानप्रदत्वाद्भगवतो दक्षिणसव्यपादौ सुव-रित्युच्येते" अर्थात् श्यामसुन्दर के दाहिने चरण में (सु) आनन्द औ बायें चरण में (वर) ज्ञान का निवास है इसकारण उसके चरणकमल मकरन्दानुरागी भक्तजन भ्रमरों के निमित्त 'सुवर' अर्थात् भगवदुभय चरणा-रविन्द आनन्द औ ज्ञान का देनेवाला है। फिर स्वर्लोका-भिमानिनी देवता वा स्वयं स्वर्गलोक। प्रार्थना पूर्ववत्। (भूः, भुवः, स्वः, ये तीनों महाव्याहृति कहलाती हैं)।

ॐ महः—(मह पूजायां धातु से असुन् प्रत्यय करने से महः बना) इसलिये सबसे उच्च होने से जिसकी पूजा कीजावे वह 'महः' अर्थात् परमात्मा। फिर महर्लोकाभिमानिनी देवता अथवा स्वयं महर्लोक जो स्वर्गलोक से ऊपर चौथालोक है (प्रार्थना पूर्ववत्)।

ॐ जनः—(जननार्थक जन धातु से असुन् प्रत्यय करने से जनः बना) जो सम्पूर्ण सृष्टि को

उत्पन्नकरे वह (जनः), अर्थात परमात्मा. अथवा जन-लोकाभिमानिनी देवता वा स्वयं जनलोक जो पांचवां लोक है (प्रार्थना पूर्ववत्) ।

ॐ तपः—(आलोचनार्थक तप धातु से अ-सुन् प्रत्यय करने से तपः बना) इसलिये जो सर्वके दुःख, सुख, पाप, पुण्य इत्यादि कर्मों का विचार करे वह तपः, स्वयं परमात्मा, फिर तपलोकाभिमानिनी देवता अथवा स्वयं तपलोक यह छठवांलोक है (प्रार्थनापूर्ववत्)

ॐ सत्यम्—स शब्द उत्तमं ब्रूयादानन्दं तितिवैवदेत् । येति ज्ञानं समुद्दिष्टं पूर्णानन्दद्दशि-स्ततः ॥ अर्थात् 'स' कहिये उत्तम 'त' कहिये आनन्द औ 'य' कहिये ज्ञान को, इसकारण स, त, य, इनतीनों से उत्तम आनन्द औ ज्ञान का बोध होता-है, अतएव जिसमें उत्तम आनन्द औ ज्ञान की पूर्णता होवे उसे कहिये सत्य अथवा भूत, भविष्यत्, वर्तमान, तीनोंकाल में जिसका नाश न हो उसे कहिये सत्य अर्थात् स्वयं पूर्णब्रह्म परमात्मा, फिर सत्यलोकाभिमा-निनी देवता अथवा स्वयं सत्यलोक यह सातवांलोक है (शेष पूर्ववत्) ।

॥ इति सप्तव्याहृतिमन्त्रार्थः ॥

अथ गायत्रीमन्त्रार्थः ।

बुद्धिमानों को भलीभांति ज्ञात है कि यह गायत्री अनुष्टुप्छन्द में है औ अनुष्टुप् के चार चरण औ ३२ अक्षर होतेहैं इसलिये इस गायत्रीमन्त्र के भी चार चरण औ ३२ अक्षर हैं इसीकारण यह गायत्री चतुष्पदी भी कहलाती है फिर क्या कारणहै कि वेदत्रयी के द्विजमात्र इस गायत्री के केवल तीनहीचरण को अंगीकार कर त्रिपदी गायत्री का गायत्री छन्दमें जप औ ध्यान करतेहैं चौथापद जो 'परोरजसेसावदोम्' इसको क्यों छोड़ देतेहैं, तो उत्तर इसका यह है कि "चतुर्थपादस्याथर्वणान्तः पातित्वेन तत्र पृथगुपनयनस्याऽऽवश्यकत्वात् तदभावेनाथर्वणवेदान्तः पातिनि चतुर्थपादे नाधिकारोस्ति" अर्थात् यह जो चौथापद ऊपर कहाहै वह केवल अथर्ववेद में आयाहै औ ब्राह्मणभाग वेद का वचन है कि "नान्यत्र संस्कृतो भृग्वङ्गिरसोऽधीयीत" जिसका अन्यत्र संस्कार है अर्थात् ऋग्, यजुः, साम, वेद का संस्कार है वह आंगिरस अथर्ववेद को नहीं पाठ करसकता इसलिये अथर्ववेदीय मन्त्र के पाठ के निमित्त पृथक् उपनयन की आवश्यकताहै, पृथक उपनयन न होने से अथर्ववेदपाती चतुर्थ-

पाद के पाठ का अधिकार नहीं है, अथर्ववेदवाले निस्स-न्देह चारों पादों का जप वा ध्यान करसकतेहैं ।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ॥

प्रथम जितने शब्द इस मन्त्र में हैं उनका भिन्न भिन्न अर्थ इस स्थान में जनाकर फिर आगे सम्पूर्ण अर्थ को स्पष्ट करेंगे ।

तत्—(तदिति षष्ठ्या परिणम्यते) वैदिक प्रयोग होने के कारण 'सुपांसुलुक्' इत्यादि सूत्र से षष्ठी के एक वचन का लुक होजाने से 'तत्' ज्योंका त्यों रहा इसलिये इस तत् का अर्थ देशभाषा में हुआ 'तिसका' अथवा 'तदिति द्वितीययापरिणम्यते' उक्त सूत्रानुसार द्वितीया विभक्ति के लोपहोने से तत् का अर्थ हुआ तिसको फिर 'तदिति ब्रह्मवाची पष्ठ्यन्तं' यह तत् शब्द षष्ठीविभक्तिवाला ब्रह्मवाची है जैसे 'ॐ तत्सत्' में तत् शब्द ब्रह्मवाची है ।

सवितुः—(ण्वुलतृचौ) सूत्रानुसार सू धातु से तृच प्रत्यय करने से सवितृ बनताहै, तिसका षष्ठ्यन्त रूप (सवितुः) होताहै, अर्थात् (सूते सकल-

जननिर्वृतिहेतुं वृष्टिमिति) जो सम्पूर्ण जगत के मुख निमित्त वृष्टिप्रदान करे वह सविता कहलाताहै। अथवा (सूते नानोपासनाफलानीति सविता) अर्थात् नानाप्रकार की उपासना करनेवालों को अपनी अपनी उपासना के अनुसार फल देवे वह सविता। अथवा (सूते जगन्तीति सविता) जगत को जो उत्पन्न करे वह सविता क्योंकि (सविता प्रसवानामीशः) औ (सविता प्रसवानामधिपतिः) भिन्न २ ग्रन्थों में ऐसे वाक्यों के देखने से ज्ञात होताहै कि सविता का अर्थ उत्पत्ति करनेवाला अधिपति अर्थात् जगदीश्वर भी है। अथवा इसी सूत्रानुसार सु धातु से भी तृच प्रत्यय करने से (सविता) होताहै अर्थात् (सौतिसकलश्रेयांसि ध्यातृणामिति सविता) जो ध्यान करनेवालों को सर्वप्रकार का मंगल प्रदान करे वह सविता। सविता का अर्थ शिव भी है, यजुर्वेद अध्याय १६ रुद्री में अनेक मन्त्रों से सिद्ध होताहै कि सविता अर्थात् आदित्य रुद्र का भी वाचक है।

वरेण्यम्—(वृ धातु से एण्य प्रत्यय करने से वरेण्य पद होताहै) अर्थात् प्रधान, श्रेष्ठ, वरणीय, सेवनीय, फिर शिव को भी वरेण्य कहतेहैं, शिवसहस्र नाम में (वरो वराहो वरदो वरेण्यः समहास्वनः)

ऐसा लेख है । फिर [तन्वादीनां विकल्पेनेयङ्‌वङ्‌डित्यनेनेयङादेशः] तन्वादि धातुओं को विकल्प से इयङ्, उवङ् आदेश होने के कारण (वरेण्यं) अथवा [वरणीयं] ये दोनों रूप होतेहैं ।

भर्गः—भ्रस्ज भर्जने धातु से 'अञ्च्यञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च' इस उणादि सूत्र से असुन् प्रत्यय करके अन्तवर्ण ज को कवर्ग अर्थात् 'ग' आदेश होकर सान्त होने से भर्गस् होकर भर्गः हुआ, द्वितीया में रखने से (भर्गः) अर्थात् जो तेज संसार की अविद्यादि दोषों को भस्म करदेवे, फिर योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि—

भृजी पाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाचयतेह्यसौ ।
भ्राजते दीप्यते यस्मात् जगच्चान्ते हरत्यपि ॥१॥
कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः ।
भ्राजते तत्स्वरूपेण तस्माद्भर्गः स उच्यते ॥२॥
भेति भीषयते लोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः ।
ग इत्यागायते जस्रं भगवान् भर्ग उच्यते ॥३॥
आदित्यान्तर्गतं यच्च ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ।
हृदये सर्वभूतानां जीवभूतस्स तिष्ठति ॥४॥

अर्थात् 'भृज' धातु का पाचन अर्थ में भर्ग

रूप वनताहै अर्थात् जो सब पचावे, फिर तेजस्वरूप होकर सबों की बुद्धि को प्रकाश करे, अथवा कालाग्नि रूप होकर जगत का संहार करे औ अपने तेज से सम्पूर्ण संसार की अविद्यादि अंधकार को नाश करे, [भ] का अर्थ संसार को जो भययुक्त करे, [र] का अर्थ प्रजा को जो रमावे, [ग] का अर्थ निरन्तर जिसका यश गायाजावे, तिसे भर्ग कहतेहैं, फिर जो सर्वोत्तम तेज सूर्य्यमण्डल में है उसे भी भर्ग कहतेहैं, औ जो आत्मरूप होकर सब जीवों के हृदय में स्थित है उसे भी भर्ग कहतेहैं। अथवा इसी धातु से [घञ् प्रत्यय] करने से [भर्ग] अदन्त पुल्लिङ्ग पद सिद्ध होताहै जिसका अर्थ शिव है किन्तु शिव ऐसा अर्थ केवल अदन्त पुँल्लिङ्गही का होगा।

देवस्य—दिवु धातु क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गति, इतने अर्थ में आताहै। प्रथम क्रीड़ार्थक दिवु से [पचाद्यच] अर्थात् अच् प्रत्यय करने से देव पद सिद्ध हुआ अर्थात् [ध्यातत्वाद्धृदयारविन्दमध्ये क्रीडतीति वा देवः] ध्यान करनेवालों के हृदयकमल में जो क्रीड़ाकरे वह देव। यद्वा गत्यर्थक होने से [दीव्यति उदयास्तंगमनाभ्यां लोकयात्रां प्रवर्तयन्देशान्तरं

यातीति देवः] जो उदयाचल से अस्ताचल को जाते-हुए लोकों को अपने २ कार्य्य में प्रवृत्त करातेहुए देश देशान्तरों को जावे वह देव । यद्वा प्रकाशार्थक दिवु धातु से अच प्रत्यय करने से जो सर्वत्र प्रकाश करे वह देव अथवा द्युलोक में जो वर्तमान रहे वह देव अथवा जो स्तुति के योग्य होवे वह देव अथवा मोदार्थक दिवु से [देवयति=भक्तजनान् हर्षयति] जो भक्तजनों को हर्षित करे वह देव ।

धीमहि—ध्यायेमहि 'प्रार्थनायां लिङ' प्रार्थना अर्थ में लिङ लकार का रूप हुआ किन्तु छन्द में सम्प्रसारण होने के कारण ध्यायेमहि के स्थान में धीमहि हुआ, अर्थात् हमलोग ध्यान करें ॥

धियः—धी कहिये बुद्धि को तिसकी द्विती-या बहुवचन का रूप है धियः अर्थात बुद्धिवृत्तियों को । यद्वा 'धी शब्दोऽत्र व्यतिरेकलक्षणयाऽज्ञा-नपरः' अर्थात् व्यतिरेकलक्षणा करके अज्ञान मिश्रित वृत्तियों को अथवा स्वयं अज्ञान को भी धी कहसकतेहैं ।

नः—(अस्मान्) हमलोगों को औ (अस्माकं) हमलोगों का दोनों अर्थ होगा ।

प्रचोदयात्—(प्र+चुद=प्रेरणे) छन्द में वैदिक प्रयोग होने के कारण लेट लकार में आट के आगम होने से प्रचोदयात् का अर्थ प्रेरणा करताहै वा प्रेरणा करे, वा प्रकाशकरे ।

अर्थ—यो सूर्य्यदेव हमलोगों की बुद्धिवृत्तियों की प्रेरणा करताहै उस जगत के उत्पन्न करनेवाले प्रकाशमान सूर्यदेव के पूजनीय भर्ग को अर्थात् अविद्यादि पापों के भस्म करनेवाले तेज को हमलोग ध्यान करें ।

यद्वा जो [सविता] नाम सूर्य्यमण्डल के मध्य वर्तमान जगत के पोषण औ धारण करनेवाले, औ संसार के भस्म करनेवाले भर्गदेव हमलोगों की बुद्धि को प्रेरणा करते हों उस क्रिड़ादिगुणविशिष्ट जगत के उत्पन्न करनेवाले के वरेण्य अर्थात् श्रेष्ठ वा सेवा करनेयोग्य रूप को हमलोग ध्यानकरें ।

यद्वा जो [सविता] देव क्रिड़ादिगुणों से विशिष्ट हमलोगों की बुद्धि को अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, की ओर प्रेरणा करतेहों तिस देव के सर्वव्यापी [वरेण्य] सेवनीय [भर्ग] तेज की हमलोग उपासना करतेहैं ।

यद्वा जो [सविता] सूर्य सकल संसार के सुख

देने के निमित्त वर्षा इत्यादि के देनेवालेहैं, अथवा ध्यान करनेवाले भक्तों के लिये सर्वप्रकार के कल्याण को उत्पन्न करनेवाले हैं औ अपनी उपासना करनेवालों को उनकी उपासना अनुसार भिन्न २ फल के देनेवाले अथवा जो अपनी क्रीडा से उदयाचल से उदय होकर अस्ताचल को जातेहुए लोगों को अपने प्रकाशद्वारा अपने २ कार्य्य में प्रवृत्त करातेहुए देश देशान्तर को जातेहैं उनका हमलोग ध्यान करें, अथवा जो द्यु-लोक में वर्तमान रहनेवाले देव अपने भक्तों के हृदय-कमल में क्रीडा करनेवाले हैं अथवा अपनी उपासना करनेवालों को उनकी उपासना का अनेक फल देनेवाले, स्तुति करने के योग्य हैं ऐसे देव के [वरेण्य] श्रेष्ठ, पूजनीय, पुरुषार्थ की कामना करनेवालों से सेवनीय भर्गदेव को अर्थात् उस ब्रह्मतेज को जिससे सम्पूर्ण संसार के अविद्यादि दोष भूनादियेजातेहैं, अथवा जिस के तेज से सम्पूर्ण संसार भस्म होजाताहै अर्थात् प्रलय होजाताहै हमलोग ध्यान करें, ।

अथवा—भीषाऽस्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति । जिसके भय से वायु चलताहै जिसके भय से सूर्य्य उदय होताहै, जिसके भय से अग्नि औ इन्द्र धावतेहैं

औ पांचवीं मृत्यु धावती है, फिर जो प्रजा को नाना-प्रकार के सुख में रमानेवाला जिसके यश को तीनों लोक, चौदहों भुवन के प्राणीमात्र गान करके अपने २ अभिष्ट को सिद्ध करतेहैं ऐसे भर्गदेव को (धीमहि) हमलोग ध्यान करतेहैं. [यः] जो [नः] हमलोगों की बुद्धि वृत्तियों को अविद्यादि दोषों से हटाकर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की ओर अथवा अपने स्वरूप की ओर (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे वा प्रेरणा करताहै, अथवा हमलोगों की धी * जो अज्ञानरूपी अन्धकार उसे दूरकरताहै, अथवा जिस तेजके प्रकाश से अन्तःकरण विषे [अहंब्रह्मास्मि] ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है, अर्थात् ध्यान करते २ [शरवत्तन्मयोभवेत्] श्रुति प्रमाण से यह जीवात्मत्व रूपी बुद्धि परमात्मत्वरूप तत्त्वमें ऐसे लय होजातीहै जैसे शर † अपने लक्ष्य में। अथवा ध्यान करते २ श्यामसुन्दर की तेजोमयी मूर्त्ति मेरे अन्तःकरण में प्रकाशकरे। यद्वा 'रुद्री' के प्रमाण से सविता कहिये शिव को तिस शिव के 'भर्ग' को अर्थात् महेश्वर रूप तेज को हमलोग ध्यान करतेहैं जो हमारी अज्ञानता मिश्रित बुद्धिवृत्तियों को प्रेरणा कर ध्यान, धारणा, समाधि, की ओर लगावे।

---

* व्यतिरेकलक्षणा करके धी शब्द का अर्थ अज्ञान भी है।

† शर का अपने लक्ष्य में लय होना (देखो पृष्ठ ६२)।

श्रीस्वामिविद्यारण्यकृत श्लोकों के द्वारा गायत्री का अर्थ।

तदित्यवाङ्मनोगम्यं ध्येयं यत्सूर्यमण्डले ।
सवितुः सकलोत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणः ॥
वरेण्यमाश्रयणीयं यदाधार मिदंजगत् ।
भर्गः स्वसाक्षात्कारेणाविद्यातत्कार्यदाहकम् ॥
देवस्यद्योतमानस्य ह्यानन्दात् क्रीडतोऽपिवा ।
धीमहइं स एवेति तेनैवाभेदसिद्धये ॥
धियोऽन्तःकरणवृत्तीश्च प्रत्यक्प्रवणचारिणीः ।
य इत्यलिङ्गधर्मं यत्सत्यज्ञानादिलक्षणम् ॥
नोऽस्माकं बहुधाभ्यस्तभिन्नभेदद्दृशान्तथा ।
प्रचोदयात्प्रेरयतु प्रार्थनेय विचार्यते (ताम्) ॥

(तत्) जो सूर्यमण्डल में ध्यानकरने योग्य मन वचन से अगम्य है औ जो [सवितुः] सम्पूर्ण चराचर की उत्पत्ति, स्थिति औ संहारका करनेवालाहै तिसका जो (वरेण्य) रूपहै जिसके आधार से यह जगत वर्तमान है औ आश्रयकरनेवालाहै औ जो भर्ग है अर्थात् अपने साक्षात्कार होने से अविद्या औ उसके कार्य्य पापादिकों का दहनकरनेवाला है ऐसे [देवस्य] देवके रूप को जो भक्तों के हृदय में प्रकाश करनेवाला

है अथवा आनन्दमय क्रीड़ाकरनेवाला है ऐसे ब्रह्मको अभेदसिद्धि के अर्थ अर्थात् जीव ब्रह्म की एकता के निमित्त [धीमहि] हमलोग ध्यान करतेहैं, [यः] यहां नपुंसकत्व के कारण यत् जो [सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म] सत्य, ज्ञानादि स्वरूप है सो पुरुष अनेकप्रकार के भेदयुक्त [नः] हमलोगों की [धियः] अन्तःकरण की उन वृत्तियोंको जो जीव के सन्मुख दौड़नेवाली हैं अर्थात् जीवात्मा करके व्यवहारोंको करानेवाली हैं, ब्रह्मतेज की ओर प्रकाश करे अर्थात् ,सोहमस्मि, की बुद्धि होजावे, यही प्रार्थना है ॥ इति ॥

अथ शीर्षमन्त्रार्थः ।

शीर्ष शब्द का अर्थ शिर अर्थात् मस्तकहै यह शब्द शिरस् है सो 'पृषोदरादिगण' से शीर्ष हुआ, अथवा श्रृ धातु से क प्रत्ययकरने से सुक् का आगम हुआ तब शीर्ष बना । यह मन्त्र प्राणायाम का अन्तिमखण्डहै ।

ओमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥ तै० प्रपा० १० अ० १७

आपः—'आपः स्त्री भूम्नीतिकोशात्' अप् यह शब्द स्त्रीलिङ्ग औ सदा बहुवचनान्त है जिसका अर्थ है जल। यद्वा [आपः] अदन्त करने से 'आ सम्यक् प्रकारेण पातीति आपः' जो सम्यक्प्रकार से पालन करे उसे कहिये आप अर्थात् स्वयं परमात्मा ॥

ज्योतिः—अनन्त तेजनिधि, परम प्रकाश रूप अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योतिर्मय जगदीश्वर यथा 'तेजः तेजस्विनामहम्' 'गीतायाम्' ॥

रसः—मधुरादि रसरूप होकर जो व्यापरहा है यथा 'रसोऽहमप्सु कौन्तेय' गीतायाम्, यद्वा 'सार रूपत्वात्सारभोक्तृत्वात्सुखस्वरूपत्वाद्रसः अर्थात् सर्वचराचर जगत का साररूप, सार भोक्ता औ अत्यन्त सुख स्वरूप जो हो उसको कहिये रस, फिर ॐकार एकाक्षरब्रह्म को भी सबरसों का सारतररस कहते हैं (देखो पृष्ठ ६५, ६६) फिर (रसोवैसः) इस श्रुतिवचन से भी रस का अर्थ परमात्मा।

अमृतं—सुधा अथवा मुक्ति, यद्वा (नित्यमुक्तत्वान्मरणरहितत्वादमृतम्) अर्थात् जो नित्य मुक्त होवे मरणादि दोषों से रहित होवे उसे कहिये अमृत अर्थात् स्वयं ब्रह्म परमात्मा।

ब्रह्म—बृंह धातु से मनिन् प्रत्यय करने से ब्रह्म पद बनता है जो बढ़ वा उच्च करे, बढ़ावे, सब से वृद्ध औ पूर्ण होवे। पूर्ण, प्रणव औ सामवेद को भी ब्रह्म कहते हैं 'वेदानां सामवेदोऽहम्' गीतावचनात्।

भूर्भुवः स्वरोम्—इस में चार पद हैं, (भूः, भुवः, स्वः, ओ३म्) इन चारों का अर्थ पूर्व में हो आया है।

देखा जाता है कि उक्त शीर्ष मन्त्र में जितने शब्द हैं सबका अर्थ है परमात्मा, इसकारण इस मन्त्र का अर्थ यह हुआ कि जो परमात्मा आप अर्थात् जल रूप होकर सम्पूर्ण सृष्टि की रचना औ पालन कररहा है फिर ज्योतिः होकर सर्वत्र प्रकाश कररहा है औ रस रूप होकर सबको अपनी ओर खींचरहा है औ अमृत रूप होकर सन्तों को जीवनमुक्ति का प्रदान करनेवाला है औ ब्रह्मरूप होकर भूः, भुवः, स्वः इत्यादि लोकों में व्यापरहा है ऐसे ब्रह्म का हमलोग ध्यान औ उपासना करें॥ इति॥

गृहस्नानमन्त्रार्थः ।

इस स्थान में गृहस्नानमन्त्रों का अर्थ किया जाताहै जिनकी आवश्यकता सर्वसाधारण पुरुषों को नित्य होतीहै किन्तु बृहत्स्नान के मन्त्रों के अर्थ इस पुस्तक के दूसरे भाग में कियेजावेंगे ।

ओ३म् इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचतापरुष्ण्या । असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया ॥ ऋ० अष्ट० ८ अ० ३ वर्ग ६ मन्त्र ५

यहां प्रधान सात नदियों की औ उनही से निकलीहुई तीन और नदियों की अर्थात् सबमिलकर दश नदियों की स्तुति कीजाती है । क्योंकि स्नान के समय इनकी स्तुति करनी अति आवश्यक है ।

भाषार्थः—हे गङ्गे, हे यमुने, हे सरस्वति, हे शुतुद्रि (सतलज) औ परुष्णि (इरावदी) नदी के साथ हे मरुद्वृधे (चनाव), औ हे आर्जिकीये

(विपाशा वा व्यासा) आप भी असिक्नी [रावी] वितस्ता [झेलम] औ सुषोमा [सिन्ध] के साथ २ मेरी स्तुति को अच्छेप्रकार (आसचत) सेवन कीजिये औ (आशृणुहि) मेरे सन्मुख होकर भलीभांति श्रवण कीजिये। असिक्नी, वितस्ता, सुषोमा, का आर्जिकीया के साथ संयोग होना निरुक्त में लिखा है, यथा—

हे गङ्गे हे यमुने हे सरस्वति शुतुद्रि यूयं (मे) मम स्तोमम् (सचत) आसेवध्वम् परुष्ण्या सह मरुद्वृधे आर्जिकीये त्वमपि असिक्न्या वितस्तया, सुषोमया च सह आशृणुहि आभिमुख्येन स्थित्वा शृणुहि॥ (निरुक्त अ० ९ पा० ३ खण्ड ९)

ओ३म् पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत्सरित्। शुक्ल यजु० अध्याय ३४ मन्त्र ११

टीका—(पञ्चनद्यः) सतलज, व्यासा इत्यादि पांचों नदियां (सरस्वतीम्) गुप्तरूप सरस्वती को (उ) निश्चय करके (अपियन्ति) प्राप्तहोती हैं अर्थात् उक्त पांचों नदियां अपने प्रकट प्रवाह से गुप्तरूप सरस्वती नदी में जामिलती हैं (सासरस्वती तु) वही

गुप्त सरस्वती नदी गानो (देशे) पाञ्चाल अर्थात् पंजाब देश में (पञ्चधामरित्) उक्त पांचों नदियों का रूप धारण कर (अभवत्) प्रकट हुई हैं। स्नान-काल में इसी मन्त्र से इन नदियों की स्तुति औ ध्यानकरे।

यद्वा चारों वेद औ पांचवां इतिहास ये पांचों महावेदरूप प्रणवरूपा सरस्वती को जामिलती हैं, वही प्रणवरूपा सरस्वती ब्रह्मपिण्डरूप पांचालदेश में उक्त पांचोंवेदरूप नदियां होकर प्रकट हुई हैं, क्योंकि पूर्व पृष्ठ ९१ में कह आये हैं कि ये सब वेद, पुराणरूप शब्दब्रह्म प्रणवब्रह्म से प्रकट हुए हैं औ फिर उसी प्रणव में लय होजाते हैं इसकारण अध्ययन, अध्यापन रूप तीर्थ में स्नान करने के समय इसी मन्त्र से प्रणव सहित वेदादिरूप नदियों की स्तुति औ प्रार्थना करनी चाहिये।

यद्वा पांचों प्राणरूप नदियां महाकुण्डलिनी रूपी सरस्वती में निश्चय करके प्रवेश करजाती हैं सो गुप्तरूप महाकुण्डलिनी रूपा सरस्वती ब्रह्मरन्ध्र रूप पाञ्चालदेश में उक्त पांचों प्राणरूप नदियां होकर प्रकट हुई, अर्थात् ये पांचों प्राण महाकुण्डलिनी से प्रकट हो फिर उसी में लय होजाती हैं। इसकारण योग क्रिया आरम्भ करने के समय इसी मन्त्र से महाकुण्ड-लिनी इत्यादि की प्रार्थना करनी चाहिये ॥ इति ॥
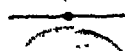
भूप्रार्थनामन्त्रार्थः ।

ॐ पृथिवि त्वया धृतालोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वञ्च धारय मां देवि पवित्रं कुरुचासनम् ॥
(सब वेद औ शाखावाले इसी मन्त्र से आसनशुद्धि करें)

भाषार्थः—हे पृथिवि त्वयाधृतालोका सब लोक लोकान्तर, देश देशान्तर तुझसे धारणकियेगयेहैं औ हे देवि तू स्वयं विष्णुनाधृता विष्णु भगवान् से धारणकीगयीहै अर्थात् साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् ने वाराह अवतार लेकर तुझको अपने दांतपर धारण कर दुष्ट हिरण्याक्ष से रक्षा कीहै । अथवा तुझको अद्भुतशक्ति के आधार से अधर में स्थिर कर रखाहै सो तू भी कृपाकर धारयमां मुझको सुखपूर्वक धारण कर औ मेरे आसन को भी पवित्रकर अर्थात् जबतक मैं आसनलगा अपनी क्रियाकरूं तबतक भूकम्प इत्यादि दोषों से मेरे आसन को मत चंचलकर ।

भूतशुद्धिमन्त्रार्थः ।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमि संस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥१॥ अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम् । सर्वेषामविरोधेन सन्ध्याकर्मसमारभे ।२। तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्त दहनोपम । भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ।३।

टीका—जो जो भूत, प्रेत, मेरी सन्ध्या करनेवाली भूमि पर स्थितहैं अर्थात निवासकरतेहैं वे सब इस स्थान से अपसर्पन्तु दूसरीजगह हटजावें. औ जो भूत प्रेत विघ्नके करनेवालेहैं वे सब भी शिव भगवान् की आज्ञा से यहां से नाशहोजावें अर्थात इस स्थानको छोड़देवें, इनको छोड और भी जो अन्यस्थान के रहने वाले भूत, प्रेत, पिशाच, इस सन्ध्या के समय, इस भूमि पर आये हों वे भी दशों दिशा को चलेजावें,

क्योंकि मैं सबों के अविरोध से सन्ध्याकर्म का आरम्भ करताहूं, अर्थात् मैं किसी से विरोध नहीं करता, इस-कारण ये लोग भी मेरी इस सन्ध्या की पूर्ति में किसी प्रकार का विरोध कर विघ्न न करें ॥ १, २, ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण दांतवाले, महाविशाल शरीरवाले प्रलयकाल के अग्नि समान जाज्वल्यमान जो भैरव तिनको मैं नमस्कार करताहूं आप मुझको सन्ध्या करनेकी आज्ञा देवें ॥ ३ ॥ ——०——

भस्मधारणमन्त्रार्थः ।

इसके अन्तर्गत तीन प्रकार के मन्त्र हैं, १ः भस्म मर्द्दन करने का मन्त्र, २. भस्म को अभिमन्त्रण करने का मन्त्र, ३. भस्मधारण करने का मन्त्र ।

भस्ममर्द्दनमन्त्रः—ॐ अग्निरितिभस्म । वायुरिति भस्म । जलमिति भस्म । स्थलमिति भस्म । व्योमेति भस्म । सर्वंꣳ हवा इदं भस्म । मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति ॥ (अथर्वशीर्षोपनिषद् खण्ड ५)

टीका—भस्म=(भसन्) (बभस्तीति, भस्, भर्त्सन संदीप्त्योः × सर्वधातुभ्योमनिन्—उणा० ४। १४४। इतिमनिन्) दग्धकाष्ठादि विकारः—काठ इत्यादि का जलाहुआ विकार जिसको छाई अथवा राख, वा खाक भी कहतेहैं।

यद्वा [स्वतोभातीतिभस्म] जो आपसे आप प्रकाश करे वह भस्म अर्थात् ब्रह्म, जैसा कि सूतसंहिता का वचन है [भस्मविज्ञाननिष्ठस्य कर्तव्यंनास्ति किञ्चन] जो प्राणी भस्मविज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान में निष्ठहै उसको और कुछ कर्तव्य नहींरहता, इस से सिद्धहोताहै कि भस्म का अर्थ ब्रह्म भी है इसकारण इस मन्त्र का दो प्रकार से अर्थ करतेहैं अग्नि, वायु, जल, स्थल, व्योम (आकाश) (सर्व) ये सब द्रव्य निश्चय करके भस्म अर्थात् ब्रह्मरूपहैं अथवा ब्रह्मकरके व्याप्तहैं, यद्वा प्रलय-काल में ये पाचों तत्त्व नाशहो भस्मरूप होजातेहैं अर्थात् परमाणुरूप बनकर आकाशमें फैलजातेहैं [देखो पृष्ठ ६] फिर मन औ चक्षु इत्यादि भी भस्म अर्थात् ब्रह्मरूपही हैं अथवा ज्ञान के उदयहुए इनका अभाव अर्थात् नाश-होजाताहै क्योंकि ये सब ब्रह्माकार होजातेहैं। इस मन्त्र को पढ़तेहुए प्रत्यक्ष भस्म को हाथ में ले मर्दन करताहुआ ब्रह्म का ध्यान करताजावे औ यह भी

स्मरण करताजावे कि यह शरीर इत्यादि जो कुछ है उसको किसीकाल में भस्म होनाही है।

मृत्तिकामर्द्दनमन्त्रः—

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ॥

ऋ० सं० अष्टक १ अ० २ वर्ग ७ मन्त्र २०

भावार्थः—सूरयः ऋत्विक् प्रभृति जो विद्वद्गण अथवा वेदान्तपारग योगिश्रेष्ठ विद्वान वे विष्णोः उस महापुरुष परमात्मा के तत्परमंपदम् उस सकल शास्त्र प्रसिद्ध स्वर्गस्थान को वा परमोत्कृष्ट प्राप्तिव्य ज्योति को अथवा कैवल्यपरमपद को सदापश्यन्ति सर्वकाल में प्राप्तकरतेहैं वा ज्ञानचक्षु से कैसे देखते हैं इव जैसे चक्षु नेत्र दिवि मानसकमल वा द्युलोक में आततम् फैलाहुआ सम्पूर्ण विराट को अर्थात् विश्व को देखताहै, तात्पर्य्य यह कि जैसे नेत्रों के सामने भूमण्डल से आकाशतक स्वच्छ देखाजाताहै तैसे विद्वान परमपद को स्वच्छ देखतेहैं।

इस मन्त्र से केवल तिलकधारण के लिये मृत्तिका मर्द्दन कियाजावेगा। ऋग्वेदियों के लिये मृत्तिकामर्द्दन

विशेष कर विहित है, यदि ऋग्वेदी इसी मन्त्र से भस्म भी मर्दन करलेवें तो कोई हानि नहीं ।

भस्माभिमन्त्रणमन्त्रः—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम् । उर्व्वारुकमिवबन्धनादितो मुक्षीयमामुतः ॥

शु० य० अ० ३ मन्त्र ६०

टीका—पुष्टिवर्धनम् सांसारिक औ पारमार्थिक पुष्टि के बढ़ानेवाले त्र्यम्बकम् तीननेत्र वाले अथवा तीनों लोकों के पिता अथवा तीनों लोक स्वर्ग, मर्त्य पाताल, अथवा तीनों काल भूत, भविष्यत्, वर्तमान, में व्याप्त अथवा अकार, उकार, मकार तीनों अक्षरों से सिद्धहोनेवाले महेश्वर को यजामहे हमलोग पूजा करतेहैं, हे परमेश्वर ! मृत्योः मुक्षीय अकालमृत्यु वा संसारबन्धन से छोड़ाओ, किन्तु अमृतात्मा अमृत जो कैवल्यपरमपद उस से मत छोड़ाओ तात्पर्य यह कि

संसारबन्धन से छोड़ाकर मोक्षदो, किसप्रकार संसार-बन्धन से छोड़ाओ इव जैसे सुगन्धिम् शोभनगन्ध-युक्त अर्थात् परिपक्व उर्वारुक ककड़ी वा खीरे के फलको बन्धनात् अपनी डालियों से काल छोड़ादेताहै। फिर सुगन्धिम् सुन्दर कामनाओं की पूर्ति करनेवाले पतिवेदनम् अपने २ पति अर्थात् इष्टदेव को प्राप्त-करानेवाले त्र्यम्बकं महेश्वर को यजामहे हम पूजन करतेहैं, औ यह प्रार्थना करतेहैं कि हे महेश्वर आप इतः मुक्षीय इस संसारबन्धन से अथवा मातृगर्भ से हमको छोड़ाओ किन्तु अमुतः उस पतिलोक से अर्थात् इष्टदेव के लोक से मत छोड़ाओ। कैसे छोड़ाओ उर्वा-रुकमिवबन्धनात् पूर्वअर्थानुसार ।

ॐ प्रसद्यभस्मनायोनिमपश्च पृ-थिवीमग्ने । सꣳसृज्यमातृभिष्ट्वञ्ज्योति-ष्मान् पुनरासदः ॥

शु० य० अ० १२ मन्त्र ३८

टी०—अग्ने हे अग्नि त्वम् तुम भस्मना भस्म द्वारा योनिम् कारणरूप पृथिवीम् * पृथिवी को च

---

* पृथिवी से भस्म की उत्पत्ति है इसकारण पृथिवीही उस भस्म की योनि अर्थात् कारण हुई।

और अपः जलों को प्रसद्य पाकर मातृभिःसंसृज्य-
जलों से मिलकर ज्योतिष्मान तेजस्वी होतेहुए पुनः
आसदः फिर अपने स्थान अग्निकुण्ड में आठहरो।

भस्मधारणमन्त्रः—

ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम् ॥

शु० य० अ० ३ मंत्र ६२

टी०—यत् जो जमदग्नेः यमदग्निमुनि की त्र्या-
युषम् वाल, यौवन, वृद्ध तीनों अवस्थाओं का समाहार
है औ कश्यपस्य जो ब्रह्माके पौत्र कश्यप प्रजापति
की त्र्यायुषम् तीनों अवस्थाओं का समाहार है, और
जो देवेषु त्र्यायुषम् इन्द्रादि देवताओं की तीनों अवस्था-
ओं का समाहार है, तत् उस आयु का तीनों भाग
नः हमलोग भस्मलगानेवाले को अस्तु प्राप्त होवे
तात्पर्य्य यह कि जैसे उक्त महर्षिगण औ देवगण
दीर्घजीवी हैं वैसेहमलोग भी दीर्घजीवी होवें।

(इस मन्त्र से यजुर्वेदी सन्ध्यावाले भस्म धारण
करें, और ऋग्वेदियों का मंत्र आगे लिखाजाताहै)।

भस्मधारणमन्त्रोऽथवा तिलकधारणमन्त्रः—

ॐ अतो देवाअवन्तुनो यतो वि-
ष्णुर्विचक्रमे पृथिव्याः सप्तधामभिः ॥

ऋ० अ० १ अ० २ व० ७ मन्त्र १६

टी०—देवाः ब्रह्मादि देव अतः इस भूलोक से नः हमलोगों को अवन्तु रक्षाकरें यतः जिस भूलोक से विष्णुः वामनावतार विष्णुभगवान् ने पृथिव्याः विस्तार ब्रह्माण्ड के सप्तधामभिः सातों लोकों से विचक्रमे विविध पाद क्रमण किया अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने चरणों से मापलिया ।

सामवेदवाले सप्तधामभिः के स्थान में अधिसानवि ऐसा पाठकरें जिसका अर्थहै ऊंचेदेश ब्रह्मलोक तक पादक्रमण किया, अर्थात् अपने चरण से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मापतेहुए ब्रह्मलोकतक पादार्पण किया, ।

कृष्णयजुर्वेदी तैत्तिरीयशाखावाले सप्तधामभिः का अर्थ यों करतेहैं कि उस परमात्मा ने ॐ भूः, ॐ भुवः इत्यादि सातों व्याहृतियों के उच्चारण से सातोंलोकों को पलमात्र में निर्माण करदिया । (इस मन्त्र से केवल ऋग्वेदीय सन्ध्यावाले तिलक अथवा भस्म धारण करें) ।

शिखाबन्धनमन्त्रार्थः।

ॐ मानस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मानो वीरान्रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तस्सदमित्त्वा हवामहे ॥

शु० य० अ० १६ मन्त्र १६

टी०—रुद्र हे महेश्वर जो आप अपने भय से जगत के रुलानेवाले हो और इसकारण 'रुद्र' कहलाते हो सो आप नः हमलोगों के तनयेतोके बालबच्चों को अथवा तनये योग के विस्तार करनेवाले तोके प्राण को मारीरिषः मत हनन करो। और नः हमलोगों के आयुषि जीवन को मा मत नाश करो और नः हमलोगों के गोषु गऊओं को अथवा इन्द्रियों को मा मत दुःख दो अर्थात् इन्द्रियों पर विजयकराओ कि वे हमारे वशीभूतहों! और नः हमलोगों के अश्वेषु घोड़ों को मत नाशकरो अथवा हमलोगों के मानसमूह पर

कृपाकरो और नः हमलोगों के भामिनः वीरान् तेजस्वी वीरपुत्रों को वा कटक को अथवा शम, दमादि वीरों को मावधीः वध मतकरो, क्योंकि हविष्मन्तः हमलोग हवि के देनेवाले सदमित् सदैव हविसे युक्त होकर त्वा तुमको हवामहे आह्वानकरतेहैं, (एवम्प्रकार सब वेद औ शाखावाले इस मंत्र से अथवा गायत्रीमंत्र से ब्रह्म का ध्यान ब्रह्मरन्ध्र में करतेजावें औ शिखा बांधतेजावें) ।

—०—

मालाधारणमन्त्रार्थः

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे (वैसेही जैसे भस्माभिमंत्रण में देखो पृष्ठ १२१)

आचमनमन्त्रार्थः ।

ॐ केशवायनमः स्वाहा । ॐ नारायणायनमः स्वाहा । इत्यादि जो २४ मंत्र हैं स्पष्टहैं इनके अर्थ की आवश्यकता नहीं है ।

हिरण्यकेशीय शाखावालों को आचमन के 'आपोहिष्ठा' मंत्र के साथ निचलामंत्र अधिक पढ़ना चाहिये। आपोहिष्ठा का अर्थ आगे मार्जनमंत्र में कियाजावेगा।

हिरण्यकेशीय आचमनमन्त्रः—

ॐ आपो वा इदᳯ सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणो वा आपः पशव आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दाᳯस्यापो ज्योतीᳯष्यापो यजूᳯष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप ॐ ॥

तै. आ. प्र. १० अ. २१

टीका—आपो वा इदᳯसर्वं यह जोकुछ रचना इस ब्रह्माण्ड में है सब जलहीजल है, कैसे उसे कहते हैं विश्वा भूतान्यापः संपूर्ण भूत अर्थात् जीवमात्र जलही हैं क्योंकि यह जल रेतरूप होकर सब के शरीर में प्रवेश कियेहुआ है जिस से सकल प्राणियों

की उत्पत्ति होती है फिर प्राणो वा आपः प्राण भी जलही है क्योंकि जलही के पानकरने से प्राण पुष्ट होताहै यदि जल पान न कियाजावे तो यह प्राण एक-दम नष्ट होजावे । पशवआपः गऊ, अश्व, इत्यादि पशु भी जलही हैं.-क्योंकि ये सब भी पूर्वकथनानुसार रेतरूप जलही से उत्पन्न होतेहैं, अन्नमापः शाली गोधूम, यव, षष्टिका (साठी) इत्यादि अन्न भी जलही हैं क्योंकि वृष्टरन्नंततःप्रजा इस वेद मंत्र से सिद्ध है कि वृष्टि जो वर्षा उससे सब प्रकार के अन्न उत्पन्न होतेहैं । अमृतमापः अमृत भी जलही है प्रसिद्धहै । फिर सम्राडापोविराडापः स्वराडापः सूत्रात्मा जो हिरण्य-गर्भ उसको कहिये सम्राट् औ सम्पूर्ण जो ब्रह्माण्डरूप देह उसे कहिये विराट् औ जो विना सहायता किसी के आप से आप जो राजताहो अर्थात् शोभायमान होताहो उसको कहिये स्वराट् अर्थात् परमात्मा सो ये तीनों भी आप अर्थात् ब्रह्मरूपही हैं (आप का अर्थ 'ब्रह्म' शीर्ष मन्त्रमें करआयेहैं देखो पृष्ठ ११०)छन्दाꣳ स्यापः गायत्र्यादि छन्द अथवा स्वयं वेद भी आप अर्थात् जलही हैं क्योंकि इन के द्वारा यज्ञ होताहै औ यज्ञाद्भवतिपर्जन्यः इस वचन से यह बात प्रसिद्ध है कि यज्ञ से पर्जन्य अर्थात् मेघ उत्पन्न होताहै:

इसकारण छन्द जो वेद वह भी जलही है। ज्योतीरॅं-
प्याप: सूर्यादि ज्योति भी जलही हैं सूर्य से ही वर्षा
होतीहै प्रसिद्ध है. क्योंकि यज्ञ के हवनकियेहुए द्रव्य
वाष्पहोकर सूर्य में जातेहैं और सूर्य से फिर जलहोकर
पृथिवीमण्डल में पतनहोतेहैं। यजूंॅंप्याप: मन्त्रादि
भी जलही हैं पूर्वकथनानुसार। सत्यमाप सत्य जो
यथार्थ कथन वह भी "आप" ही हैं अर्थात ब्रह्महीहैं,
सर्वादेवताआप: इन्द्रादि देवता भी "आप" ही हैं,
भूर्भुव: सुवराप: भूलोक, भुवर्लोक, सुवर्लोक ये तीनों
लोक भी "आप" ही हैं अर्थात जलरूप अथवा ब्रह्म
रूपही हैं। इस मन्त्र में "सत्माडाप:" से लेकर "भूर्भुव:
सुवराप" तक आप शब्द का अर्थ जल औ परमात्मा
दोनोंही हैं बुद्धिमान स्थानानुसार समझलेवेंगे। क्योंकि
इन मन्त्रों से जल की स्तुति कीगई है॥

सामवेदीय आचमनमन्त्र:—

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्व-
तोमुख:। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आ-
पोज्योतिरसोऽमृतम्॥१॥

टी०—इस मन्त्र से जल की स्तुतिकरतेहैं। हे

जल एवं तुम जो विश्वतोमुखः सर्वदिशाओं में सर्वत्र वर्तमान हौ सो भूतेषु सर्वप्राणियों के भीतर गुहायां उनके हृदयरूप गुहा में अन्तश्चरसि भीतर ही भीतर प्रवाहकरतेहौ क्योंकि यह प्रसिद्धहै कि सर्वत्र आकाश में वायु के साथ २ जल अपने परमाणुरूप से फैला हुआहै, इसकारण विश्वतोमुखः कहा, फिर प्राणिमात्र के शरीर के भीतर यही जल रुधिर रूप से नख शिख तक प्रवाहकरताहुआ प्राणिमात्र को जीवितरखताहै यदि रुधिररूप जलका प्रवाह रुकजावे तो मृतक होजावे, इसकारण 'भूतेषु' औ 'अन्तश्चरसि' कहा, फिर यह बात सब्बदेशवाले यहांतक कि आजकाल एनेटौमी (Anatomy) अंग्रजी के (डौकटर) चिकित्सक लोग भी इसबात को स्वीकार करतेहैं कि यह रुधिर हृदयकमल में विशेषकर निवासकरताहै वहां एक द्वार से मलिन रुधिर प्रवेश कर दूसरे द्वार से स्वच्छ होकर सर्वाङ्ग में फैलताहै और उस हृदयकमल (Pericordium) के चारों ओर जल का समूह झिल्ली के समान वर्तमानहै वही जल हृदयपर हर्ष अथवा शोक के धक्के लगने से पिघलकर गांधारी औ हस्तजिह्वा दोनों नाडियों के द्वारा नेत्र से बाहर निकलआताहै इसकारण हृदय कमलरूप गुहा में जलका होना सिद्धहै। फिर कहतेहैं

कि हे जल त्वंयज्ञः तुमही यज्ञरूप हो पूर्व में सिद्ध-करआयेहैं, त्वंवषट्कारः तुमही 'वषट्कार' * हो, फिर आप हो अर्थात् सम्यक्प्रकार से पालन करनेवाले हो ज्योति हो, रस हो, औ अमृत हो, शीर्षमन्त्र में वर्णन करआयेहैं देखो पृष्ठ ११० ।

ॐ शन्न आपो धन्वन्याः शमनः सन्तुनूप्याः । शन्नः समुद्रिया आपः शमनः सन्तु कूप्याः ॥२॥

टी०—प्रथम सामान्य रूप से जलकी स्तुति कीगई है अब विशेषरूप से करते हैं ।

धन्वन्याः मरुदेश में स्थित जो जल वे नः हम लोगों को शंसन्तु कल्याणकारक अर्थात् सुखदाई हों इसीप्रकार अनूप्याः मालवा देश में स्थित जो जल वे नः हमलोगों को शंसन्तु मङ्गलदायकहों और समुद्रिया आप जो समुद्र में स्थित जल हैं वे भी नः हमलोगों को शंसन्तु पूर्ववत् । औ कूप्याः कूप में स्थित जो जल वे भी पूर्वप्रकार ही शंसन्तु कल्याणकारकहों ।

---

* वषट्—किसी वस्तु को देवताओं के लिये अर्पण करने का एक चिन्ह है जैसे "इन्द्रायवषट्" ।

अथर्ववेदीया आचमनमन्त्राः—

ॐ जीवास्थजीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥ ॐ उपजीवास्थोपजीव्यासं सर्वमा० ॥२॥ ॐ संजीवास्थ संजीव्यासं सर्वमा० ॥३॥ ॐ जीवलास्थजीव्यासं सर्वमा० ॥४॥

इन चारों मन्त्र का अर्थ एकसाथ कियाजाताहै। ॐ जीवास्थ इति—यह वेद में प्रसिद्धहै कि "इन्द्रो जीवस्सूर्यो जीवो देवा जीवाः" इस मन्त्र से इन्द्र, सूर्य, औ सर्वदेवता जीव अर्थात् जीवनेवाले समझेजाते हैं, इस कारण इस मन्त्र में कहतेहैं कि जीवास्थ हे इन्द्रादि देव आपलोग जो जीवनवाले हैं औ आयुष्मान हैं सो आपलोगों के अनुग्रह से जीव्यासम् हमलोग भी जीवनवाले औ आयुष्मान होवें कबतक जीवें इसकारण कहते हैं कि सर्वमायुः पूर्णआयु भर अर्थात् शतवर्ष तक जीव्यासं हमलोग जीवें।

ॐ उपजीवास्थ इति—उप का अर्थ

अधिक इस स्थान में लियागयाहै इसलिये उपजीवास्थ जो देव अधिक जीवनेवालेहैं वे अपने सेवकों को भी अधिक दिन जिलावें और उनके जिलाने से उपजीव्या-सम् हमलोग भी अधिक दिन अर्थात् शतवर्ष से अधिक जीवें । सर्वमायुर्जीव्यासम् पूर्ववत ।

ॐ संजीवास्थ इति—संजीवाः जो समीचीन जीनेवाले हैं अर्थात् एकक्षण भी अपने जीवन को व्यर्थ नहीं विताते किन्तु उपकार में लगातेहैं ऐसे जीवनेवालों के संग संजीव्यासम् हमलोग भी अपने जीवन को उपकार में लगातेहुए जीवें । सर्वमायु-र्जीव्यासम् का अर्थ पूर्ववत् जानना ।

ॐ जीवलास्थ इति—जीवला हे देवता-ओ जीवनवाले जो आपलोग स्थ हैं सो आप लोगों के संग जीव्यासं हमलोग भी जीवनवाले हों । शेष पूर्ववत् ॥ इति ॥

पवित्रधारणमंत्रार्थः ।

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सू-

यैस्य रश्मिभिः । शु० य० अ० १ मंत्र १२

टी०—पवित्रे हे दोकुशवाले अथवा तीनकुश वाले पवित्र! तुम वैष्णव्यौ यज्ञ सम्बन्धी स्थः हो अर्थात् सन्ध्या जो ब्रह्मयज्ञ अथवा और किसी प्रकार का यज्ञ उसके साधन के निमित्त प्राणियों के अंगुलियों में जो तुम स्थितरहते हो, सो वः तुमको सवितुः सर्वप्राणियों के प्रेरक परमेश्वर की प्रसव-प्रेरणा होने पर अच्छिद्रेण छिद्ररहित पवित्रेण वायुरूप पवित्र से अर्थात् निर्मलवायु से तथा सूर्यरश्मिभिः सूर्य की पवित्र किरणों से उत्पुनामि अतिशय करके पवित्र करताहूं ।

तस्यते पवित्रपते पवित्रं पूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम् ।

शु० य० अ० ४ मन्त्र ४

टी०—पवित्रपते हे पवित्र के पति अर्थात् पवित्र के धारणकरनेवाले यजमान तस्य पवित्रपूतस्य पूर्वोक्त पवित्रा से अर्थात् पूर्वोक्त मंत्र में कथन कियेहुए पवित्रा से शुद्ध कियाहुआ ते तेरी यत्कामः जो सन्ध्योपासनरूप अथवा अन्यकोई जो सोमयागादिरूप

कामनाहै. उसे पुने मैं भी पवित्रकरताहूं, सो मैं तत् उनदोनों प्रकार की कामनाओं को पूर्णकरने में शकेयम् समर्थ होऊं, यही मेरी प्रार्थनाहै ।

उक्त दोनों मंत्रों से शुक्ल औ कृष्ण यजुर्वेद, सामवेद औ अथर्ववेद वाले पवित्र धारणकरसक्तेहैं किन्तु ऋग्वेदवालों के लिये दोमंत्र नीचे लिखेजातेहैं ।

ॐ पवित्रंवन्तः परिवाचमासते पितैषांप्रत्नोऽअभिरक्षतिव्रतम् । महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे धीराऽइच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥१॥ ऋ० अ० ७ अ० २ व० २९ मंत्र ३

टी०—पवित्रवन्तः निज स्पर्श से सकलपदार्थों के शुद्धकरनेवाले और अपने सामर्थ्य से युक्त जो सोमरश्मिगण अर्थात् चन्द्रमा के किरणसमूह हैं वे वाचम् मदन, खदिर, धत्तूर, सोमलता, और कुश इत्यादि वनस्पतियों के चारों ओर परिआसते पर्युपवेशनकरते हैं अर्थात् उपस्थित रहतेहैं, क्योंकि यह प्रसिद्धहै कि चन्द्रमा की किरणों ही से नानाप्रकार की वनस्पतियों में विशेषकर कुशादिकों में अमृतरस चारों

ओर से भरताहै, फिर प्रत्नः पुराणः अर्थात् प्राचीन एषांपिता इन रश्मियों के पिता अर्थात् उत्पन्नकरने वाले जो सोम वह व्रतम् अपने व्रत को अर्थात् प्रकाश करनेवाले कर्म के नियम को पालनकरतेहैं, तात्पर्य्य यह कि चारोंओर अपनी किरणों से प्रकाश करतेहैं फिर यही सोम जो वरुणः वरुणरूपहैं अर्थात् अपने तेज से सर्वपदार्थों को आच्छादनकरनेवालेहैं वही सोम रूप वरुण महः समुद्रम् विशाल आकाश को अपनी किरणों से तिरोदधे ढ़ापलेतेहैं, अर्थात् सर्वत्र अपनी ज्योति को फैलातेहैं, ऐसे सोमदेव को धीरा इत् सर्व प्रकार के कर्मों में कुशल विद्वान ऋत्विग्गण ही धरुणेषु सब प्राणियों के धारण करनेवाले उदकों में अर्थात् जलों में आरभम् आरंभ करसकतेहैं अर्थात् पानकरसकतेहैं, तात्पर्य्य यह कि सोम ही की किरणें अमृतरस होकर सोमलता में प्रवेश करतीहैं, उस सोमलता को जल में निचोड़कर यज्ञकर्त्ता सोमरस बनाकर यज्ञों में अर्पण कर आप पानकरसकते हैं. दूसरों का ऐसा अधिकार नहीं, इसकारण कहा कि ऐसे सोमदेव को केवल विद्वानही धारण करसकतेहैं ॥ १ ॥

ॐ प॒वित्रं॑ते॒वित॑तं ब्रह्मणस्पते प्र॒भुर्गात्रा॑णि॒पर्ये॑षि वि॒श्वतः॑। अत॑प्त-

नूनं तदामो ऽअश्नुते भृतास ऽइद्वहन्तस्तत्स मांशत ॥२॥ ऋ० अ० ७ अ० २ व० ८ मंत्र १

टी०—ब्रह्मणस्पते हे मन्त्रों के स्वामिन् सोम! ते पवित्रं विततम् आप के पवित्र रश्मिरूप अङ्ग अर्थात् किरणमाला सर्वत्र फैली हुई हैं वही प्रभुः समर्थ जो आप गात्राणि सोमरसपीनेवाले के अङ्गों में पर्य्येषि प्रवेश करते हैं औ विश्वतः सर्वत्र आपका पवित्र अतप्ततनूः शीतलशरीर आमः न अश्नुते अपरिपक्व हो नहीं व्यापता अर्थात् आप की ज्योति मलिन औ निर्बल * नहीं होती किन्तु भृतासइत परिपक्वही हो वहन्त सर्वत्र ज्योति प्रदान करते हुए तत्समाशत उस पवित्र में जिसे हम सन्ध्या के समय अथवा और किसी कर्म के समय धारण करते हैं व्यापकर शुद्धकरती है, क्योंकि प्रसिद्ध है कि पवित्र विशेष कर कुश का बनता है औ कुश चन्द्र-किरण से व्याप्त है इसलिये चन्द्रमा की किरणों से पवित्र का शुद्ध होना सिद्ध है ॥२॥ ॥इति॥

* यदि शंका हो कि प्रतिपदा से अष्टमी तक शुक्लपक्ष में औ कृष्णपक्ष में अष्टमी से अमावस्यातक तो ज्योति मलिन रहती है तो उत्तर यह कि जब भूगोल की एक ओर मलिन ज्योति होगी तो दूसरी ओर अवश्य अधिक होगी, विज्ञानशास्त्रवाले इस वचन को भली भांति समझेंगे।

हृदिपवित्रकरणमन्त्रार्थः

इसमें दो मन्त्र हैं प्रथम इन्द्रियस्पर्श फिर हृदिपवित्रकरण ।

इन्द्रियस्पर्श मन्त्रार्थः—

ओं वाक् वाक्, ओं प्राणः प्राणः मन्त्रों से तात्पर्य्य यह है कि इन भिन्न २ मन्त्रों से भिन्न २ अंग स्पर्श कियेजातेहैं (देखो बृहत्सन्ध्या पृष्ठ ९४ अथवा ९६) इनमें १२ मन्त्रहैं बारहों से बारह अंगों का स्पर्श अंगुलियों के द्वारा होता है, प्रत्येक मन्त्र में अंगों के नाम के साथ प्रथम ओंकार सुशोभित होरहाहै, जिसका तात्पर्य्य यह है कि ओंकार एकाक्षरब्रह्म जो इन अंगों में सर्वत्र व्यापरहाहै वह मेरे अमुक अंग को बलवान करे और अमुक इन्द्रिय को मेरे वशीभूतकरे, इनकी प्रबलता मुझपर न होने देवे यही प्रार्थना है ।

हृदिपवित्रकरण मन्त्रार्थः—

ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपिवा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स वा-

ह्याभ्यन्तरः शुचिः ।

टी०—अपवित्र दशा में अथवा पवित्र दशा में अथवा और सर्वप्रकार की अवस्था में जो पुण्डरीकाक्ष अर्थात् कमलनयन श्यामसुन्दर को स्मरणकरताहै उसके भीतर बाहरवाले सर्वअंग शुद्धहोजातेहैं, अथवा भीतर मानसिक शुद्धि भी होती है और बाहर शारीरिक शुद्धि भी होती है (इसी मन्त्र से मन्त्रस्नान भी कियाजाता है)।

सन्ध्यासङ्कल्पमन्त्रार्थः

ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं प्रातः सन्ध्योपासनमहंकरिष्ये ॥

टी०—मम मेरे जो उपात्त अर्थात् इस जन्म अथवा अनेक जन्मों में जो उपार्जन कियेहुए पाप उनको क्षयद्वारा नाशकरके श्रीपरमेश्वर के युगल चरणारविन्द में प्रेम होने के लिये सन्ध्योपासनं सन्ध्योपासन को अहंकरिष्ये मैं करताहूं।

ॐ तत्सत् सन्ध्योपासनमहंकरिष्ये ॥

ओ३म्, तत्, सत्, ये सब परमेश्वर के नाम हैं इस कारण तीनों नामों को साक्षी कर आज मैं सन्ध्योपासन करताहूं यह मेरी सन्ध्या सफल हो यही प्रार्थना है ।

मार्जनमन्त्रार्थः ।

इस मन्त्र के अन्तर्गत अङ्गाभिषेक मन्त्र है इसकारण उसका अर्थ जनाकर फिर मार्जन मन्त्रों का अर्थ किया जावेगा ।

अङ्गाभिषेकमन्त्राः—

ओ३म् भूः पुनातुशिरसि इत्यादि आठ मन्त्र हैं प्रथम सात मन्त्रों के साथ सातों व्याहृतियों को लगायाहै (देखो बृहत्सन्ध्या पृष्ठ ९९ अथवा १०२) सातों व्याहृतिरूप परमात्मा से यही प्रार्थना करतेहैं कि हे भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं, नाम परमात्मन् आप अपनी करुणा कटाक्ष से मेरे शिर, दोनों नेत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, दोनों पाद, और फिर मस्तक को पवित्र करो । आठवां मन्त्र है (ओ३म् खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र) खं आकाशरूप ब्रह्म जो सर्वत्र व्यापक है मेरे सब अंगों को पवित्र करे ।

मार्जनमन्त्राः—

ॐ आपोहिष्ठामयोभुवः। ॐ तानऽऊर्जे दधातन। ॐ महेरणाय चक्षसे॥ ॐ योवः शिवतमोरसः। ॐ तस्य भाजयते हनः। ॐ उशतीरिव मातरः॥ ॐ तस्माअरङ्ग मामवो। ॐ यस्यक्षयायजिन्वथ। ओमापो जनयथा च नः॥

शु० य० अ० ३६ मंत्र १४, १५, १६।

टीका—आपः हे जलो तुमही मयोभुवः सुख सम्पादयिता अर्थात् सुख की उत्पत्ति के कारण स्थ हो। स्नानादि के कारण जलों में सुखकी उत्पादकता विद्यमान है, अथवा हे आपः जलो तुम सुख की भूमि अर्थात सुख की उत्पत्ति के स्थान हि निश्चयकरके हो, 'मयः' शब्द का सुखवाची होने में प्रमाण यच्छिवंतन्मयः फिर निरुक्तका वचनहै कि आपोहिष्ठासुखभुवः इन वचनों से मयः का सुखवाची होना सिद्धहै और ताः तादृश सुखभूमि जो तुम हो सो तुम नः हमलोगों को ऊर्जे *

---

* "ऊर्जे अन्नाय निरुक्तिः" अर्थात् निरुक्तिकार ने ऊर्ज का अर्थ अन्न लिखा है।

अन्न के लिये दृधातन स्थापित करो, तात्पर्य्य यह कि हमारी शालि इत्यादि व्रीहियों नाम अन्नों को धारावृष्टि द्वारा पुष्टकरके हमारे लिये पूर्ण अन्न का सम्पादन कर हमें प्रीतियुक्त करो। यदि शंका हो कि अन्नयाचन उचित नहीं क्योंकि यह एक साधारण लौकिकलाभ है, तो इस शंका के दूरकरने के निमित्त अन्नयाचन को तत्त्वज्ञान का उपयोगी देखाते हैं, कि महेरणाय महान रमणीय चक्षसे परब्रह्म रूप के दर्शन के लिये, अर्थात् हे जलो तुम हमारेलिये पूर्ण अन्न सम्पादन कर उसमें प्रीतियुक्त करो कि जिसके भोजन करने से हमको विशालरमणीय आनन्दवर्धक ब्रह्मज्ञान प्राप्तहोवे, क्योंकि निर्म्मल अन्न भोजनकरने से सब इन्द्रियों की सन्तुष्टि होती है और इन्द्रियों की स्वस्थता होनेपर बुद्धि निर्म्मल औ विशाल होती है औ सत्कर्मों के करने में समर्थ होतीहै, इसकारण अन्नयाचन किया। किन्तु रसरूप ही अन्न इन्द्रियों को पुष्टकरताहै इसकारण, इस समय उस रस की याचना करतेहैं कि योवः वह जो तुम्हारा शिवतमः अत्यन्त मंगलदायक रसः सारांशहै सो नः हमको तस्य उसरस का इह इस जन्म में अथवा इस कर्म में भाजयतः भागी बनावे अर्थात् प्राप्तिकरावे, कैसे उसका उदाहरण देतेहैं कि जैसे उशतीः प्रीतियुक्त मातरः माता अपने पुत्रों को दुग्ध

देवताओं* के शरीर में भी प्रवेश करनेवाले हैं वह मयोभूः सुख के भावयिता अर्थात् प्राप्तकरानेवाले होवें। द्यावा-पृथिवी द्युलोक औ पृथिवीलोक ऋतावरी सत्ययुक्त होवें औ यज्ञिये याग के लिये अर्थात् सन्ध्यादि कर्मों के लिये हित होतेहुए पयसा जलसे औ पयोभिः क्षीरादि रसों से मा पुनीताम् मुझे पवित्र करें ॥ ७ ॥

ॐ बृहद्भिः सवितस्तृभिः। वर्षिष्ठै-र्देव मन्मभिः। अग्ने दक्षैः पुनाहि मा ८

टीका—सवितः हे प्राणियों को भिन्न २ कर्मों में प्रेरणा करनेवाले अग्नेदेव अग्नि देवते! आप बृहद्भिः महान अर्थात् बड़ी बड़ी तृभिः पापों की शोधन करनेवाली युक्तियों से औ वर्षिष्ठैर्दक्षैः पापों के छुड़ाने में अत्यन्त श्रेष्ठबुद्धि की कुशलता से औ मन्मभिः मननों से अर्थात् मेरे में अनुग्रह करने की चिन्ता से मा पुनाहि मुझे पवित्र करो ॥ ८ ॥

ॐ येन देवा अपुनत। येनाऽऽपो

---

* "प्राणं देवा अनुप्राणन्ति" श्रुति प्रमाण से देवताओं में भी प्राण है।

टीका—यः जो देव पोता सबों के शुद्धकरनेवाले हैं सः सोदेव पवित्रेण पवित्र से अर्थात् जो पवित्र धारणकर मार्जन करता हूं उस पवित्र से अथवा शुद्धि के साधनभूत हमलोगों के जप औ ध्यानादि कर्मों से मा मुझको पुनातु पवित्र करें, वह देव कैसेहैं कि पवमानः पवित्रकरनेवालेहैं औ सुवर्जनः सुवर जो स्वर्गलोक उसमें उत्पन्नहैं, और विचर्षणीः नानाप्रकार के शोधनविधि के जाननेवाले हैं अर्थात् मनुष्यों को पापों से शुद्ध करने में परमप्रवीण हैं ॥ १ ॥

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः। पुनन्तु मनवो धिया। पुनन्तु विश्व आयवः २

टी—देवजनाः जो कल्प के आदिही से स्वर्गलोक में उत्पन्न होकर निवासकरतेहैं अर्थात् जो स्वर्गवासी देव हैं वे पुनन्तुमा मुझको पवित्रकरें और जो मनवः स्वायंभुमनु इत्यादि ऋषिहैं वे धिया अपनी कृपामयी बुद्धि से पुनन्तु मुझे पवित्रकरें और जो आयवः अपने कर्म से मनुष्य लोक में आकर सदाचार में निरतहैं वे विश्वे सब पुनन्तु मुझको पवित्र करें ॥२॥

ॐ जातवेदः पवित्रवत्। पवित्रेण

पुनाहि मा । शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ रनु ॥ ३ ॥

टीका—जातवेदः 'जातानि सर्व्वाणि कारणत्वेन विदन्ति यामिनि' अर्थात् सम्पूर्णलोक के उत्पन्न जीव जिसको अपना कारणरूप जानतेहैं ऐसा जो जातवेदः परमेश्वर. सो हे जातवेदः परमात्मरूप अग्नेदेव अग्नि देव शुक्रेणदीद्यत् अपनी दीप्ति अर्थात् तेज से भासतेहुए जो आप मो क्रतून् अनु हमारे यज्ञों को अथवा सन्ध्यादि कर्मविशेषों को अनुसरण करो अर्थात् कर्मानुसार फलदायक होओ और पवित्रेणक्रत्वा अपने पवित्र क्रतु से अर्थात् निर्म्मल वा शोधक शक्ति से पवित्रवत् जैसे हमारे कर्मों को पवित्र करतेहो तैसेही मापुनाहि हमें भी आप शुद्ध औ पवित्र करो ॥ ३ ॥

ॐ यत्ते पवित्रमर्चिषि । अग्ने वितंतमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीमहे ॥ ४ ॥

टीका—अग्ने हे अनल ते आपकी अर्चिषि ज्वाला के अन्तरा बीच में यत् जो विततम् फैलाहुआ औ पवित्रम् निर्म्मल ब्रह्म तेज की वृद्धि है अर्थात् अग्नि में

जो अत्यन्त तेजोमयी ज्वाला बढ़रही है तेन पुनीमहे उस से हम सदा पवित्र होतेहैं ॥ ४ ॥

ॐ उभाभ्यां देव सवितः। पवित्रेण सवेन च। इदं ब्रह्म पुनीमहे॥५॥

टीका—सवितः देव हे सूर्यदेव पवित्रेण आपका जो सकल पदार्थों को पवित्र करनेवाला सामर्थ्य है च और सवेन अपने उदय होने से जगत् के प्राणिमात्र को अपने २ कर्मों में प्रेरणा करनेकी शक्ति है उभाभ्याम् इन दोनों से इदंब्रह्म इस अपने सन्ध्यादि कर्म को पुनीमहे हमलोग पवित्र करतेहैं अर्थात् आपकी उक्त दोनों शक्तियों से हमलोगों के सर्व कर्म फलदायक औ सिद्ध होतेहैं ॥ ५ ॥

ॐ वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्। यस्यै बह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः। तया मदन्तः सधमाद्येषु। वयꣳस्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

टीका—वैश्वदेवी सम्पूर्ण विश्वमे पूजनीय जो देवी

शोधनकुशलाहै अर्थात् शुद्ध करने में प्रवीणाहै सो देवी पुनती आगान हमें पवित्र करनेके लिये आवे यस्यै जिस देवी के लिये वह्वीस्तनुवः अनेक शरीर अर्थात् बहुतेरे ऋषि मुनि वीतपृष्ठाः विजयी औ कान्तस्तुति हैं अर्थात् सदा स्तुति करतेरहतेहैं तथा ऐसे देवी से अनुगृहीत हो अर्थात् उस देवी के अनुग्रह का भाजन हो सधमा- द्येषु ऋत्विजों के साथ आनन्दमय कर्मों में मदन्तः हर्षित होतेहुए वयं हमलोग रयीणाम् पतयः स्याम धनों के पति हों अर्थात् अत्यन्त धनवान् होवें ॥६॥

ॐ वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु । वातः प्राणेनेषिरो मयोभूः । द्यावा- पृथिवी पयसा पयोभिः । ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम् ॥७॥

टीका—वैश्वानरः सब मनुष्यों के हितकारक अर्थात् उपकार करनेवाले अग्नि वा सूर्यदेव अथवा सम्पूर्ण विराटरूप ईश्वर रश्मिभिः अपनी ज्वाला वा किरणों से अथवा कृपादृष्टि से मा पुनातु मुझे पवित्र करें और वातः वायुदेव जो प्राणेनेषिरः प्राणरूप से

देवताओं* के शरीर में भी प्रवेश करनेवाले हैं वह सर्वोभूः मुख के भावदिना अर्थात प्रकाश करनेवाले होवे। द्यावा-पृथिवी द्युलोक औ पृथिवीलोक कृपावती अन्नयुक्त होते औ यज्ञिये याग केलिये अर्थात् यज्ञादि कर्मों करने हित होतेहुए पयसा जल से औ पयोभिः दुग्धादि रसों से मा पुनीताम् मुझे पवित्र करें ॥ ७ ॥

ॐ बृहद्भिः सवितस्तृभिः। वर्षिष्ठै-र्देव मन्मभिः। अग्ने दक्षैः पुनाहि मा ८

टीका—सवितः हे प्राणियों को भिन्न २ कर्मों में प्रेरणा करनेवाले अग्ने देव अग्नि देवते! आप बृहद्भिः महान अर्थात् बड़ी बड़ी तृभिः पापों की शोधन करनेवाली युक्तियों से औ वर्षिष्ठैर्दक्षैः पापों के छुड़ाने में अत्यन्त श्रेष्ठबुद्धि की कुशलता से औ मन्मभिः मननों से अर्थात् मेरे में अनुग्रह करने की चिन्ता से मा पुनाहि मुझे पवित्र करो ॥ ८ ॥

ॐ येन देवा अपुनत। येनाऽऽपो

---

* "प्राणं देवा अनुप्राणन्ति" श्रुति प्रमाण से देवताओं में भी प्राण है।

दि॒व्यंक॒शः। तेन॑ दि॒व्येन॒ ब्रह्म॑णा ।
इ॒दं ब्रह्म॑ पुनीमहे ॥९॥

टीका—येन जिस शुद्धिसाधन से देवाः देवताओं ने पूर्व यजमानों को अर्थात प्राचीन यज्ञकरनेवालों को अपुनत पवित्र किया अर्थात् उनलोगों के पापों को नाशकर शुद्ध किया और येन जिस शुद्धिसाधन से आपः जलदेवताओं ने दिव्यंकशः द्युलोकविषयकगति को अर्थात् स्वर्गलोक के मार्ग को पवित्र किया तेनदिव्येन उसादिव्य ब्रह्मणा अत्युत्तम शुद्धिसाधक ब्रह्मकर्म से इदंब्रह्म इस सन्ध्यारूप ब्रह्मकर्म को पुनीमहे हम पवित्र करतेहैं ॥९॥

ॐ यः पा॑वमा॒नीर॒ध्येति॑। ऋषि॑भि॒ः संभृ॑त॒ꣳरस॑म्। सर्व॒ꣳ स पू॒तम॑श्नाति। स्व॒दि॒तं मा॑त॒रिश्व॑ना ॥१०॥

टीका—यः जो पुरुष पावमानीः पापों से शुद्धकरनेवाले देवताओं के सम्बन्ध में इन ऋचाओं को अध्येति पढ़ताहै अर्थात् इन ऋचाओं से देवताओं का स्मरण करताहै सः वह पुरुष ऋषिभिः संभृतम्

मन्त्रज्ञ. मुनियों से मन्त्रद्वारा सम्पादित कियेहुए औ मातरिश्वनास्वादितम् वायु से सुन्दर स्वादिष्ट कियेहुए पूतम् पवित्र सर्वम्रसम् सर्वप्रकार के रस को अर्थात् दुग्ध, घृत, अन्न, इत्यादि अनेक सांसारिक रसों को अश्नाति खाताहै, तात्पर्य्य यह कि जो प्राणी इन मन्त्रों से अग्नि, सूर्य, जल व्यापक देवताओं की अथवा पूर्ण परब्रह्म जगदीश्वर की स्तुति करताहै वह सर्वप्रकार के सुखों को लाभकरताहै ॥ १० ॥

ॐ पावमानीर्यो अध्येति। ऋषिभिः संभृतꣳरसम्। तस्मै सरस्वती दुहे। क्षीरꣳसर्पिर्मधूदकम् ॥ ११ ॥

टीका—यः जो पुरुष पावमानीः इन पवित्र करनेवाली ऋचाओं को अध्येति पढ़ताहै तस्मै उस पुरुष के लिये ऋषिभिः संभृतम् मुनियों से सम्पादित क्षीरम् सर्पिः, मधु, उदकम दूध, घी, शहत, जल इन चार प्रकार के रसम् रसोंको सरस्वती वाग्देवी दुहे देतीहै ॥ ११ ॥

ॐ पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा

हि पयस्वतीः। ऋषिभिः सम्भृतो रसः।
ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितम् ॥१२॥

टीका—पावमानीः जो पापों से पवित्र करनेवाली औ स्वस्त्ययनीः कल्याण प्राप्त करानेवाली औ सुदुघा सुन्दरफल देनेवाली औ पयस्वतीः दूध, घी, इत्यादि रसों को प्रदानकरनेवाली ऋचायें हैं वे सब हमारे ऊपर अनुग्रह करें औ ऋषिभिः मन्त्रों के अर्थ जानने-वाले ऋषियों से रसः रसरूप फल हमलोगों में सम्भृतः सम्पादित होवे और ब्राह्मणेषु वेद के जाननेवाले अर्थात् वैदिक मंत्रों के अर्थ समझनेवाले जो हमलोग तिनमें अमृतम् अविनाशी फल जो मुक्ति वह हितम् सम्पादित होवे ॥१२॥

ॐ पावमानीर्दिशन्तु नः। इमं लोकमथो अमुम्। कामान्समर्धयन्तु नः। देवीर्देवैः समाभृताः ॥१३॥

टीका—देवैः इन्द्र, वरुण, अग्नि इत्यादि देवों से समाभृताः सम्पादित अर्थात सम्यक्प्रकार सिद्ध कीगई जो पावमानीः देवीः पवित्रता साधक मंत्रों

की अभिमानिनी देवी वह नः हमलोगों को इमम् इसलोक अथो और अमुम् उस लोक के सुखों को दिशन्तु देवें और नः हमारेलिये कामान् दोनों लोकों की कामनाओं को समर्धयन्तु पूर्ण करें ॥ १३ ॥

ॐ पावमानीः स्वस्त्ययनीः। सुदुघा हि घृतश्चुतः। ऋषिभिः संभृतो रसः। ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितम् ॥ १४ ॥

इस मंत्र का अर्थ मंत्र १२ में होचुका क्योंकि मंत्र १२, १४, दोनों एकही हैं केवल इस मंत्र में "पयस्वतीः" के स्थान में "घृतश्चुतः" पद है किन्तु अर्थ दोनों शब्दों का एकही है।

ॐ येन देवाः पवित्रेण। आत्मानं पुनते सदा। तेन सहस्रधारेण। पावमान्यः पुनन्तु मा ॥ १५ ॥

टीका—देवाः इन्द्रादि देवगण येनपवित्रेण जिस शुद्धिसाधन के द्वारा आत्मानं अपनी आत्मा को पुनतेसदा सदा पवित्रकरतेहैं तेन सहस्रधारेण उसी

सहस्रधारावाले शुद्धिसाधन से अर्थात् पापों से पवित्र करनेवाली हजारों प्रकार के भेदों से युक्त अर्थात् गुणार्थों से युक्त पावमान्यः पवित्र करनेवाली ऋचाएं पुनन्तु मा मुझको पवित्र करें ॥१५॥

ॐ प्राजापत्यं पवित्रम् । शतोद्यामꣳ हिरण्मयम् । तेन ब्रह्मविदो वयम् । पूतं ब्रह्म पुनीमहे ॥१६॥

टी०—प्राजापत्यंपवित्रं जो प्रजापति सम्बन्धि शुद्धिसाधन शतोद्यामं शतसंख्यक नाड़ियों से युक्त औ हिरण्मयं पापके दूरकरनेवाले द्रव्यों से निर्मित है अर्थात् प्राजापत्य यज्ञ करने के समय जो पवित्र बनायाजाताहै उसमें सौ नाड़ियों से अर्थात् सौ दर्भ के पिञ्जूल से युक्त औ स्वर्ण इत्यादि धातुओं से निर्मित कियाजाता है इसकारण प्राजापत्य पवित्र साधन की स्तुति करतेहुए प्रार्थना करतेहैं कि तेन ऐसे पवित्र साधन पवित्रों से ब्रह्मविदोवयम् ब्रह्म के अथवा वेदार्थ के जाननेवाले हमलोग पूतंब्रह्म प्रथमही से पवित्र जो ब्रह्मकर्म अर्थात् सन्ध्यादि कर्म उसे फिर दोबारा पुनीमहे पवित्र करते हैं ॥ १६ ॥

ॐ इन्द्रः सुनीती सह मां पुनातु । सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या । यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा । जातवेदा मोर्जयन्त्या पुनातु ॥ १७॥

टीका—इन्द्रः इन्द्र देवता सुनीती सह शोभनफल की प्राप्तकरानेवाली देवी के साथ मा पुनातु मुझ पवित्र करे । औ सोम चन्द्रमा स्वस्त्या स्वस्तिनाम देवी के साथ और वरुणः वरुणदेव समीच्या समीची देवी अर्थात् अनुकूला देवी के साथ औ यमोराजा यमराजदेव प्रमृणाभिः प्रकर्ष करके मारनेवाली देवी के साथ अर्थात महामारी के साथ पुनातु मा मुझ को पवित्र करें औ जातवेदा अग्निदेव ऊर्जन्त्या क्षीरादि रस प्राप्तकरानेवाली देवी के साथ मा पुनातु मुझे पवित्रकरे ॥ १७ ॥

ऋग्वेदीयमार्जनमन्त्राः—आपोहिष्ठा * के साथ निचले मन्त्रों से ऋग्वेदियों को मार्जन करनाचाहिये ।

---

* आपोहिष्ठा मन्त्र का अर्थ पृष्ठ १४१ में होचुकाहै ।

ये सब मन्त्र ऋग्वेद अष्टक ७ अ० ६ वर्ग ५ के हैं।

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १ ॥

टी०—देवीः दीप्तियुक्त आपः जलाभिमानिनी देवता नः हमलोगों को शं कल्याण देनेवाली भवन्तु होवें और अभिष्टये हमारी मनःकामनाओं की पूर्त्ति करनेकेलिये और पीतये पियासा के समय जल पान करनेकेलिये अथवा दुग्ध घृतादि रसों के पानकरने केलिये अथवा मुक्तिरूप रस के पानकरने केलिये उपस्थित होवें। और ये वही जलदेवता नः हमलोगों पर शं सर्वप्रकार के मंगल को अथवा रोगादिकों की नाश करनेवाले और भयोंको दूरकरनेवाली वृष्टिधारा को अभिस्रवन्तु बरसावें ॥ १ ॥

ॐ ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम् ॥ २ ॥

टी०—वार्याणां निवारण करने योग्य पापों को ईशाना निवारण करने में समर्थ और चर्षणीनां

प्राणियों की भयन्तीः स्थिति के हेतु औ संसार बन्धन निवृत्ति के हेतु अपः जलों से मैं भेषजं औषधि को याचामि याचताहूं ॥ २ ॥

ओमप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निं च विश्वशंभुवम् ३

टी०—अप्सुअन्तः जलों के मध्य विश्वानि नानाप्रकार की बहुतेरी भेषजा औषधियां रहती हैं क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि जलही की वृष्टि से सब औषधियों में रोगों का नाशकरनेवाला रस प्रवेशकरताहै, और विश्वशंभुवम् संसार को आरोग्यता का सुख प्राप्ति करानेवाले अग्नि भी रहतेहैं मे सोमोऽब्रवीद् यह बात मुझको चन्द्रमा ने कही है, इसलिये भेषज और संसार सुख मैं दोनों की याचना करताहूं ॥३॥

ओमापः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ ४ ॥

टीका—आपः हे जलों के देव! आप ममतन्वे मेरे शरीर के रोगों की शान्ति केलिये ढाल वा बक्तर के समान वरूथं नानाप्रकार के भेषजं औषधियों को

पुष्पों की सुरभि हमारे मुखों से प्राप्त हो सौरभ्य अर्थात् भोग्य के पदार्थ उनमें करत् हमें युक्त करें अर्थात् सर्वप्रकार के भोग्य के पदार्थों को देवें। प्र और ण हमारे आयुरिन्तारिषत् आयुर्बलों को बढ़ावें। यदि दधिक्राव्णः शब्द का सूर्यरूप अर्थ अभिलषित हो तब मंत्र का अर्थ यों होगा कि दधिक्राव्णः अपने आकर्षणद्वारा लोकों को स्थिर रखनेवाले जिष्णोः जयशील अश्वस्य अपनी रश्मियों द्वारा सर्वत्र व्यापक वाजिनः अति शीघ्रगामी सूर्यदेव की न स्तुतिकर्त्तं, शेषपूर्ववत्।

ॐ हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः। अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु॥

तै० सं० का० ५ प्र० ६ अ० १।

टी०—हिरण्यवर्णाः सुवर्णच्छाय अर्थात् दिन में स्वर्ण के समान ताम्रवर्ण शुचयः स्वच्छ पावकाः सम्पूर्ण जगत के पवित्र करनेवाले और यासु कश्यपः जातः जिस से कश्यप प्रजापति उत्पन्न हुए (अथवा

छन्द में आदि औ अन्त वर्णों के अदलबदल करनेमे पश्यक * का कश्यप पद बनताहै जिसका अर्थ है सर्वत्र देखनेवाला सबका चक्षु जो सर्व साक्षीभूत सूर्य † ऐसे सूर्य जिन जलों से उत्पन्न हुए) यासुइन्द्रः औ जिन जलों से इन्द्र देवराज उत्पन्न हुए विरूपाः याः आपः जिन जलों ने विरूप अर्थात् विविध रूप होकर अग्निगर्भंदधिरे वड़वानल आग्नि को गर्भ में धारण किया ताः नः शं भवन्तु वे जल हमलोगोंके सुख के हेतु होवें। और स्योना अवैषयिकसुख जो ब्रह्मसुख उसके उत्पन्नकरनेवाले होवें।

ॐ यासाᳬं राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्। मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शᳬं स्योना भवन्तु॥

तै० सं० का० ५ प्र० ६ अ० १

टी०—राजावरुणः जलों के स्वामी वा

(पश्यकः कश्यपो भवति यत्सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्)।

† सूर्य को जगच्चक्षु भी इसीकारण कहतेहैं।

सन्ध्या करनेवाला जलदेवता से प्रार्थना करता है कि ऊपर कथनकिये प्रकार के अन्न यदि भूल से मेरे खाने में आगये हों तो इस दोष से जलदेवता मुझे पवित्रकरें और यत् जोकुछ ममदुश्चरितम् मेरे बुरे आचरण हैं जैसे अपेय का पानकरना अर्थात् मद्य इत्यादि का पीना, औ अगम्यागमन अर्थात् परस्त्री गमन करना, तो इनसबों को नाश कर मां मुझको आपः जलदेवता पवित्रकरें, इसीप्रकार असताम् दुष्कर्मियों का जो प्रतिग्रह दान मैं ने लियाहो उस में भी जल मुझको पवित्रकरें क्योंकि 'अप्रतिग्राह्यं प्रतिगृह्य' इस आश्वलायन सूत्र के अनुसार दुष्कर्मियों से प्रतिग्रह लेने के पश्चात् प्रायश्चित करनाचाहिये, इसलिये कहा कि यह जो अभिमन्त्रित आचमनका जल है वह स्वाहा जैसे मेरे वदनान्तर के अग्नि में सुन्दर प्रकार से हुतहोवे उसीके साथ २ मेरे पूर्वोक्त सब पाप भी भस्म होजावें ।

पुनर्मार्जन मन्त्रार्थः ।

सब वेद औ शाखावाले पूर्वकथित मार्जनमंत्र से पुनर्मार्जन करें किन्तु "कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा

वालों" को निचले मंत्रों से पुनर्मार्जन करना चाहिये। [ये सब मंत्र तैत्तिरीय संहिता काण्ड १ प्रपाठक २ अध्याय ११ के हैं]।

तैत्तिरीयपुनर्मार्जनमन्त्राः—

ओ३म् दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषि तारिषत्॥

तै० सं० का० १ प्र० ५ अ० ११।

टी०—दधिक्राव्णः दधियों को क्रमण करनेवाले अर्थात् हविष्यों को वा काष्ठों को भक्षण करनेवाले जिष्णोः सर्वत्र विजयकरनेवाले अश्वस्य सर्वत्र व्यापक* वाजिनः अन्न भक्षणकरनेवाले अथवा वेगवान् अतिशीघ्र चलनेवाले ऐसे अग्निदेव की अकारिषम् मैं स्तुतिकरूं और वह अग्निदेव नः हमारे मुखा†

---

* अग्नि का सर्वत्र व्यापकहोना प्रसिद्ध है जिस किसी दो वस्तुओं को परस्पर संघर्षण करें उस से अग्नि अवश्य प्रगटहोगा।

† (सुप्‌तिङ्‌लोपश्छान्दसः) इस सूत्र से (मुखानि) को विभक्तिलोप होकर (मुखा) रहा।

का पवित्र होना कहकर पश्चात् उससे अपना पवित्र होना क्यों कहा उसे कहतेहैं । न वर्षधारास्वाचमेत् इस वचनानुसार वर्षा के धाराजल से आचमन न करे किन्तु भूमिगतास्वाप्स्वाचमेत् इत्यादि वचन से भूमि में प्राप्त जल से आचमन करना विहितहै इसकारण जलका भूमिगत होना प्रथम कहकर तब अपना पवित्र होना कहा । और ब्रह्मणस्पतिः वेद के स्वामी जो परमात्मा सो मुझे पवित्रकरें । अथवा ब्रह्मणस्पतिः * वेद के उपदेश करनेवाले आचार्य्य को जल पवित्र करे और उस आचार्य्य से उपदिष्ट जो ब्रह्म वेद वह पूता पवित्र होकर मां मुझ अध्ययन करनेवाले को पुनातु पवित्र करे, अर्थात् जल आचार्य्य को पवित्र करे और आचार्य्य से शिक्षापायेहुए वेदान्तर्गत जो सन्ध्यादि के मंत्र वे मुझे पवित्र करें अर्थात् निष्पाप करें । अब अपने कियेहुए पापसमूह की गणनाकरतेहुए उनसबों की शान्ति के लिये जलों की प्रार्थना करतेहैं, यत् जो उच्छिष्टम् भुक्तावशिष्ट अर्थात् भोजन से बचाहुआ अन्न अर्थात् जूठा अन्नहै और जो अभोज्यम् अन्न

---

* "सुपांसुलुक्" वैदिक सूत्र से ब्रह्मणस्पतिः जो प्रथमा में है उसका अर्थ द्वितीयाविभक्ति में कियागया इसकारण कहा आचार्य को ।

केश, कीट, और मूषक के विट इत्यादि से युक्त है, इन दोनों प्रकार के अन्न यदि मुझसे भोजन कियेगये हों अथवा पितरादिकों के खाने से अवशिष्ट जो अन्न हैं वे भोजन कियेगये हों तो इन दोषों से जलदेवता मुझ को पवित्र करें, यदि शंका हो कि पितुर्ज्येष्ठस्यच भ्रातुरुच्छिष्टं भोक्तव्यम् इस सूत्र से पिता औ ज्येष्ठ भाई का उच्छिष्ट खाना विहितहै तब इनके उच्छिष्ट को अभोज्य क्यों कहा, तो उत्तर यह है कि धर्म्म विप्रतिपत्तावभोज्यम् इस आपस्तम्भ के वचनानुसार यदि पिता इत्यादि पापाचरण में प्रवृत्त होवें तो उनलोगों का भी उच्छिष्ट खाना निषेध है। अथवा मधु मांसादि से मिश्रित उच्छिष्ट खाने से ब्रह्मचारी का धर्म नष्ट होताहै इसकारण इसप्रकार का भी उच्छिष्ट अभोज्यहै और उपेतः स्त्रीणामनुपेतस्यचोच्छिष्टंवर्ज्जयेत् इस वचनानुसार जो प्राणी उपेत है अर्थात् जिसका यज्ञोपवीत इत्यादि संस्कार होगयाहो वह स्त्रियों का औ अनुपेत विना यज्ञोपवीतसंस्कारवालों का अर्थात् शूद्रों का अन्न भोजन न करे, इसलिये इस मंत्र द्वारा

* इनदिनो चारों वर्णों के घर में प्रायः मांस, मद्य के ग्रहण करनेवाले कोई न कोई होतेहीहैं इसकारण उनका उच्छिष्ट खाना उचित नहींहै।

ये सब उस तेजमें स्वाहा सुन्दर प्रकार से हुत होवें जैसे यह आचमन का जल मेरे वदनान्तराग्नि में हवन होताहै, एवम्प्रकार अर्थ की चिन्ताकर जलको पीजावे।

सायमाचमनमन्त्रः—

ॐ अग्निश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षम्। मनसा वाचा हस्ताभ्याम्। पद्भ्यामुदरेण शिश्ना। अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्चिद्दुरितं मयि। इदमहं माममृतयोनौ। सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥ तै० आ० प्र० १० अ० २१

टीका—वैसेही जैसे सूर्यश्च मामन्युश्च में केवल सूर्यश्च के स्थान में अग्निश्च और रात्र्या के स्थान में अह्ना औ सूर्ये ज्योतिषि के स्थान में सत्ये-ज्योतिषि कहना है जिसका अर्थ यह है कि अग्निश्च अग्नि और मन्यु और मन्युपति इत्यादि मेरे पूर्वमंत्र कथित पापों से जो अह्ना दिन भर में मुझ से हुआहो

मेरी रक्षा करें, मैं उस पाप को सत्येज्योतिषि सत्य जो परमात्मा तद्रूप जो ज्योतिः अर्थात् ज्योतिस्स्वरूप परमात्मा में हवनकरताहूं शेषपूर्ववत् ।

मध्याह्नाचमनमन्त्रः—

ओमापः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम् । पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातुमाम् ॥ यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम । सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतांच प्रतिग्रहं स्वाहा ॥

तै० आ० प्र० १० अ० ३० ।

टी०—आपः जलदेवता पृथिवीं पुनन्तु पृथिवी को पवित्र करें अर्थात् वृष्टि द्वारा शुद्धकरें, क्योंकि आपो वै सर्वादेवताः इस श्रुति वचन से जलों में सर्वदेवत्व होना सिद्ध है और आपः स्वभावतो मेध्याः इस स्मृति वचन से जलों की स्वतः पवित्रता भी ज्ञात होती है इस सर्वदेवस्वरूप स्वयं शुद्ध जल से भूमि इत्यादि सकल वस्तुओं का पवित्र होना सम्भव है, फिर उक्त जलधाराओं से पूता पवित्र कीहुई पृथिवी भूमि मां पुनातु मुझको पवित्र करे, प्रथम जल से पृथिवी

वे नः हमलोगों को शंसन्तु कल्याणकारक हों, इसी प्रकार अनूप्याः अनुगता आपो यस्मिन् तत्र भवा इति जिसस्थान में जल बहुत होवे ऐसे देशमें अर्थात मालवा देशमें स्थित जो जल वे शंसन्तु सुखदायक हों, तैसेही खनित्रिमा खोदेहुए स्थान अर्थात् कूप अथवा ताल के जल नः हमलोगों को शं भवन्तु मंगल के हेतु हों, तथा कुम्भ आभृता नदी इत्यादि से घड़े में लायेहुए जल जो घर २ में वर्तमान रहतेहैं सो शंसन्तु मंगलदायक हों ऐसेही वार्षिकीः वर्षा से पतनहुए जो जल वे नः हमलोगों केलिये शिवाः सुखकारी हों ॥४॥

अङ्गस्पर्शन तथा

आचमनमन्त्रार्थः ।

प्रातराचमनमन्त्रः—

ॐ सूर्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम् । यद्रा-त्र्या पापमकार्षम् । मनसा वाचा हस्ता-

स्याम् । पद्भ्यामुदरेण शिश्ना । रात्रिस्त-
दवलुम्पतु । यत्किञ्चिद्दुरितंमयि । इद-
महंमाममृतयोनौ । सूर्ये ज्योतिषि जु-
होमि स्वाहा ॥ तै० आ० प्र० १० अ० ३२

टीका—सूर्य्यः सूर्य च और मन्युः क्रोध च और मन्युपतयः क्रोधाभिमानी देव मन्युकृतेभ्यः क्रोध से कियेहुए पापेभ्यः पापों से मा मुझे रक्षन्ताम् रक्षाकरें और रात्र्या रात्रि के समय में यत्पापम् जिस पाप को मनसा मनसे, वाचा वचन से हस्ताभ्याम् हाथों से पद्भ्याम् पैरों से उदरेण पेट से अर्थात् अभक्ष्य भक्षण करने से शिश्ना शिश्न अर्थात लिङ्ग से जो स्त्रीप्रसंग अथवा स्वप्न में वीर्यपात का दोष इत्यादि अकार्षम् मैं ने कियाहो तत्सर्वं उन सब पापों को रात्रिः रात्र्याभिमानी देव अवलुम्पतु नाशकरें और यत्किञ्चित् जो कुछ थोड़ाबहुत और भी किसीप्रकार का दुरितम् दोष मयि मुझ में रहगयाहो इदं इसको औ माम् उसके कर्ता अपने को भी अमृतयोनौ मृत्यु अर्थात् नाशरहित जगत के कारण स्वयं प्रकाशरूप सूर्य में अहंजुहोमि मैं हवनद्वारा भस्मकरताहूं सो

प्रणीत पूर्ण करैं अर्थात् पूर्णप्रकार से औषधियों को देवें, किस कार्य के लिये उसे कहते हैं क्योंकि चिरकाल तक सूर्य सूर्य को च और चन्द्रादिकों को दृशे देखने के लिये तात्पर्य यह कि हे जलाभिमानिनी देवता आप औषधि के समान मेरे सर्वप्रकार के रोगों का नाश करतेहुए मुझको चिरजीवी करें।

ॐ इदमापः प्रवहत यत्किञ्च दुरितं मयि। यद्वाऽहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ ५ ॥

टी०—आपः हे जलाभिमानिनी देवताओ ! आप मयि मुझ में यत्किंच जोकुछ इदंदुरितं यह पाप है उसको प्रवहत नाशकरें उत और अहं अभिदुद्रोह जो कुछ निरपराधि जीवों के हननकरने की इच्छा से मुझमें पाप उत्पन्न हुआ हो यद्वा अथवा अनृतंशेप जो किसी को विना अपराध शाप देने का दोष मुझमें हो उन सब पापों को भी आप नाश करें ५

ओमापो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि। पयस्वानग्न आगहि तं मा

संसृज वर्चसा ॥ ६॥

टी०—आपः हे जलों के देवताओ! अद्य आज इस मार्जन के समय अन्वचारिषं आपलोगों की मैं-ने सेवा की है और रसेन आपलोगों के प्रदान किये हुए रस से मैं समगस्महि संयुक्त हुआ और अग्ने हे अग्ने पयस्वान् क्षीर और उदकादि द्वारा जीवनदाता जो आप हैं सो आगहि मेरे सम्मुख आवें और तंमां सो जो मैं उसको वर्चसा ब्रह्मतेज से संसृज युक्तकरें अर्थात् ब्रह्मतेज प्रदान करें ॥ ६ ॥

मार्जन के समय अथर्ववेदियों को निचले लिखे मंत्रों को अधिक पढ़ना होगा—

अथर्ववेदीयमार्जनमन्त्राः—

ॐ शन्न आपो धन्वन्या३ शमु सन्त्वनूप्याः। शन्नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ अथर्व०काण्ड १ अनु० २ सूत्र ६ मंत्र ४

टीका—धन्वन्याः मरुदेश में स्थित जो जल

जलाभिगामी देव जो राजावरुण जनानां सकल प्राणियों के सत्यानृते अवपश्यन् पुण्य औ पाप को देखतेहुए यासांमध्ये जिन जलों के मध्य में जातेहैं अर्थात प्राणियों के पाप औ पुण्य के अनुसार अनुग्रह औ निग्रहरूप व्यापार के करने की इच्छा से जल में निवास करतेहैं औ मधुश्चुतः मधु के बरसानेवाले अर्थात रसाल इत्यादि फलों में मधु के सदृश रसके देनेवालेहैं औ शुचयः अत्यन्त निर्मल पावकाः सकल वस्तुओं को पवित्र करनेवाले याः आपः जो जलहैं ताः वे जल नः शं स्योना भवन्तु, अर्थपूर्ववत् ।

ॐ यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति । याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्ता न आपः शꣳ स्योना भवन्तु ॥

तै० सं० ५ प्र० ६ अ० १ ।

टी०—यासाम् जिन जलों का भक्षम् भक्षण देवाः इन्द्रादि देवता दिवि स्वर्गलोक में कृण्वन्ति करतेहैं अर्थात् देवतागण जिस जल को स्वर्गस्थित

मन्दाकिनी में करतेहैं अथवा जो जल अमृत होकर स्वर्ग-लोकादि में देवताओं के भक्ष्य होतेहैं और याः जो अन्त-रिक्षे आकाश में बहुधाभवन्ति अनेकप्रकार के होते हैं अर्थात् जो जल मेघमाला होकर नील, पीत, स्वेत अरुण, आसमानी, इत्यादि भिन्न २ रंगों से युक्त आ-काश में शोभायमान होतेहैं (आकाश में नानाप्रकार होने का श्रुति प्रमाण "सर्वान्छुदारान् सलिलानन्त रिक्षे प्रतिष्ठितान्" और याः जोजल पृथिवीम् पृथिवी को पयसाउन्दन्ति वृष्टिद्वारा सींचतेहैं ताःशुक्राःआपः वे स्वच्छ जल नः शँ स्योना भवन्तु अर्थपूर्ववत् ।

ॐ शिवेन॑ मा चक्षु॑षा पश्यताऽऽपः शि॒वया॑ त॒नुवोप॑स्पृशत॒ त्वच॑म्मे । सर्वाँ॑ऽ अ॒ग्नीँ॑ऽरप्सु॒षदो॑ हुवे वो॒ मयि॒ वर्चो॒ बल॒-मोजो॒ निध॑त्त ॥

तै० सं० का० ५ प्र० ६ अ० १ ।

टी०—आपः हे जलो ! शिवेन चक्षुषा आ-नन्ददायक कटाक्ष से मा पश्यत् मुझे देखो अर्थात् मुझपर प्रचुर करुणादृष्टि करो और शिवया तनुवा

अपनी कल्याणकर मूर्ति से मे त्वचम् मेरी त्वचा को उपस्पृशत स्पर्श करो अर्थात् स्नान के समय आप से मेरा सर्वाङ्ग स्पर्श होकर पवित्र होजावे और हे जल वः अप्सुषदः आप के भीतर निवास करनेवाले सर्वान् अग्नीन् वाड़वादि सब अग्नियों को हुवे मैं आह्वान करताहूं कि वे कृपाकर मयि मुझ में वर्चः, बलम्, ओजः तेज, सामर्थ्य, उत्साह निश्चल स्थापन करें अर्थात् मुझको तेजस्वी, बलवान् और उत्साही बनावें।

जलाञ्जलिप्रक्षेपमन्त्रार्थः।

ओं सुमित्रिया न आपओषधयस्सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यञ्चवयन्द्विष्मः ॥

शु० य० अ० ३८ मन्त्र २३।

टी०—आपः जल औ ओषधयः औषधियां नः हमारे सुमित्रियाः सन्तु श्रेष्ठ मित्र होवें, और यः जो शत्रु अस्मान्द्वेष्टि हमलोगों से द्वेष करताहै च और वयं हमलोग यंद्विष्मः जिस शत्रु के साथ द्वेष

करतेहैं तस्मै उन दोनों प्रकार के शत्रुओं केलिये ये जल औ औषधियां दुर्मित्रियाः सन्तु शत्रुरूप होवें ।

अघमर्षणमन्त्रार्थः ।

जुम्बकानाम्नी गायत्री—

ॐ विधृतिन्नाभ्यां घृतᳬं रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्न्नीहार मुष्मणा शीनंवसयाप्रुष्वाअश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्नारक्षांᳬंसिचित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेणं पृथिवी न्त्वचा जुम्बकायस्वाहा ॥

शु० य० अ० २५ मन्त्र ९ ।

टीका—नाभ्या नाभी से विधृतिं विधृति देवता को तृप्त करताहूं रसेन नानाप्रकार के रसों से घृतम् घृतदेवता को, यूष्णा पक्वान्न से अपः जलदेवताओं को, विप्रुड्भिः वसा अर्थात् शरीर की चर्बियों की बिन्दुओं से मरीचिः मरीचि देवता को, ऊष्मणा शरीर की

उष्णता से निहारं निहारदेवता को, वसया शरीर की चर्बी से शीनं शीनदेवता को, अश्रुभिः आंख के आंसुओं से प्स्वा प्स्वादेवता को, दूषिकाभिः नेत्रमलों से ह्रादुनीः ह्रादुनी देवताओं को, अस्ना रुधिर से रक्षांसि राक्षसों को। अङ्गैः और सब अङ्गों से चित्राणि चित्र देवता को। रूपेण रूप से नक्षत्राणि नक्षत्रों को, त्वचा शरीर के चर्म से पृथिवीम् पृथिवी को तृप्त करता हूं। ये सब जुहूदराय वरुण के लिये स्वाहा श्रेष्ठ होम होवें। अर्थात जोकुछ वस्तु ऊपर कथन कियेगए वे सब जलाभिमानी श्री वरुणदेव को भली भांति हवन होजावें।

ओं द्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतम्पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥

शु० य० अ० २० मन्त्र २०।

टीका—आपः हे जलो आप मा मुझको एनसः पाप से शुन्धन्तु शुद्ध करें अर्थात् निष्पाप करें कैसे उसे उदाहरण द्वारा कथन करते हैं कि इव जैसे द्रुपदात् पादकीलित काष्ठ अर्थात् बेड़ी से मुमुचानः मनुष्य

मुक्त होताहै अर्थात् किसी अपराध से बेड़ी में पड़ा-हुआ अपराधी किसी दयालु स्वामी से अवश्य छुड़ाया जाताहै और इव जैसे स्विन्नः स्वेदयुक्त मनुष्य स्नात्वी * स्नानकर मलात् सर्वाङ्गव्यापी मल से छूटता है अर्थात् किसी शारीरिक परिश्रम से पसीने २ होकर प्राणी स्नानकर स्वेद सम्बन्धी मलों से मुक्त होताहै और इव जैसे पवित्रेण "आजस्थाल्यामाज्यं निरूप्ये-त्यारभ्योदग्राभ्यां पवित्राभ्यां पुनराहारं त्रिरुत्पूयेति" इस शास्त्रविधि अनुसार आज्यस्थाली में स्थित आज्य घृत इत्यादि को पवित्रा के अग्रभाग से पूतम् तीनवार पवित्र कर सब दोषों से शुद्ध करतेहैं, तैसेही जल सब पापों से मुझे शुद्ध करें ।

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसो-ऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य

* स्नात्वी=स्नात्वा "स्नात्व्यादयश्च" इति निपातना-त्साधुः इस से "स्नात्वा" के स्थान में "स्नात्वी" होताहै ।

मिषतो वशी ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

ऋ० स० अ० ८ अ० ८ व० ४९

टीका—ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति इस श्रुति प्रमाण से ऋतं औ सत्यं पूर्णपरब्रह्म परमात्मा को कहतेहैं इसकारण ऋतं जो सर्व विद्या जाननेवाला सर्वज्ञ औ सत्यं जो प्रधान अनादि पुरुष अव्यय अविनाशी वही केवल सृष्टि के पूर्वकाल था और अन्य कोई भी पदार्थ नहीं था ततो रात्र्यजायत तब महाप्रलय की रात्रि जो हजार चतुर्युगी की होती है, जिससे संपूर्ण सृष्टि ढकीरहतीहै, उत्पन्न हुई फिर उसके पश्चात् अभीद्धात्तपसोऽध्यजायत उस ईश्वर के प्रकाशवान तपोरूप बल से जलमय समुद्र उत्पन्न हुआ फिर समुद्रादर्णवादधि जलमय समुद्र उत्पन्न होने के पश्चात् धाता अजायत ब्रह्मा उत्पन्न हुए वह ब्रह्मा कैसे हैं कि मिषतोवशी प्रलयकाल में लोप होगईहुई पृथिवी को अपने निमेष पलकों के खोलने से अर्थात् शयन से जागतेहुए सृष्टि की रचना में वशी समर्थ हैं। फिर उस ब्रह्मा ने अपनी शक्ति से अहोरात्राणि

विदधत् दिन औ रात्रि के धारण करनेवाले सूर्या-चन्द्रमसौ सूर्य और चन्द्रमा को यथापूर्व पूर्व सृष्टि के अनुसारही अकल्पयत् निर्माण किया, ततः सम्वत्सरोऽजायत तब सम्वत्सर अर्थात् साल, महीना, पक्ष, दिन, तिथि, मुहूर्त इत्यादि उत्पन्नहुए, तत्पश्चात् दिवं द्युलोक अर्थात् स्वर्गलोक से ऊपर महर्लोकादि लोकों को च और पृथिवीं भूलोक को च और अन्तरिक्षं अन्तरिक्ष में आकाशके मध्य में जितने और लोक हैं अथो और स्वः स्वर्गलोक को रचा अर्थात् धाता ब्रह्मा ने जैसे पूर्व सृष्टि में इन सब पदार्थों की रचना की थी तैसे इसवार की सृष्टि में भी रचना की, इस मन्त्र से सृष्टि का अनादि होना देखलातेहुए ईश्वर में सृष्टि का कर्तृत्व देखलाया। इसकारण इस मन्त्र द्वारा ऐसे सृष्टिकर्ता का स्मरण करना उचित है। (इस मन्त्र से अघमर्षण औ आचमन दोनों क्रियायें शाखा भेद से की जातीहैं) ॥ इति ॥

अर्घ्यदानमन्त्रार्थः ।

सर्व वेद औ शाखावालों को गायत्री मन्त्र से अर्घ्यदान करनाचाहिये, गायत्री मंत्र का अर्थ पृष्ठ १००

में होचुका है देखलेना ।

ॐ असावादित्योब्रह्म ॥ इस से प्रदक्षिणा करताहुआ अर्घ्यदान देना विहित है. इस मंत्र का अर्थ यह है कि असौ यह जो आदित्य सूर्य-नारायण हैं वह ब्रह्म परमात्माही हैं अर्थात् आदित्य औ परमात्मा पूर्णपरब्रह्म जगदीश्वर में अन्तर नहीं है । तात्पर्य्य यह कि यह जो अद्भुत तेज है वह ज्योति-स्स्वरूप परमात्माही है ।

यदि अर्घ्यदान का काल लोप होजावे तो निचले मन्त्र से अर्घ्यदान करनाचाहिये ।

ॐ आकृष्णेन रजसावर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेनसविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

शु० य० अ० ३३ मन्त्र ४३

टीका—सवितादेवः सूर्यदेव हिरण्ययेनरथेन ज्योतिर्मय निजरथ के द्वारा आवर्त्तमानः सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करतेहुए कृष्णेन अन्धकार से औ रजसा ज्योति से अमृतम् अमरलोक निवासी देवताओं को

औ मर्त्यम् मनुष्यादिकों को निवेशयन् अपने २ व्यापार में प्रवृत्त करातेहुए भुवनानिपश्यन् भुवनों को देखतेहुए अर्थात् सर्वप्राणियों के पाप, पुण्य के साक्षी होतेहुए आयाति मेरे समीप आतेहैं अर्थात् उदयलेतेहैं।

कृ० य० तैत्तिरीय माध्याह्न अर्घ्यदानमन्त्रः—

ॐ ह॒ꣳसः शु॑चि॒षद्व॒सुर॑न्तरिक्ष॒सद्धोता॑ वेदि॒षदति॑थिर्दुरोण॒सत्। नृ॒षद्व॑र॒सदृ॑त॒सद्व्यो॑म॒सद॒ब्जा गो॒जा ऋ॑त॒जा अ॑द्रि॒जा ऋ॒तं बृ॒हत्॥

तै० आ० प्र० १० अ० ४०।

टीका—हंसः "हन्त्यघं खे गच्छति वा ततो हंस इति स्मृतः" इस प्रमाण से जो पापों को नाश करे औ आकाशमण्डल में चले वह हंस अर्थात् सूर्य अथवा (हंसो विहङ्गभेदेच परमात्मनि मत्सर इति) इस विश्वकोष के वचनानुसार स्वयं परमात्मा फिर शुचिषत् पुण्यक्षेत्रादि में जानेवाले वसुः जलके धारण करनेवाले अर्थात् वृष्ट्या कान्त्या वासयतिजगत् तस्माद्वसुः स्मृतः इस वचनानुसार वृष्टि द्वारा अथवा

अपनी कान्ति अर्थात् तेजद्वारा जगत को स्थित रखने वाले और अन्तरिक्षसत् आकाश में निवास करनेवाले वेदिषत् अग्निरूप * से वेदीपर रहनेवाले अथवा सा वा इयं पृथिव्येव वेदिः फिर वेदिः परिष्कृताभूमिः इन श्रुतिवचनों से भूलोकादिकों को औ शुद्ध भूमि को वेदि कहते हैं इसकारण सम्पूर्ण भूलोकादिकों में औ पवित्र स्थानों में अर्थात् विशेष कर काशी, हरिद्वार इत्यादि तीर्थों में वास करनेवाले परमात्मा अतिथिः अमावस्या इत्यादि तिथियों से रहित अथवा अतिथि के समान पूज्य दुरोणसत् (विदीर्णस्वाद्धृत्कमलं दुरोणं तत्र वासकृत्) इस वचनानुसार हृदयकमल में वास करनेवाले, नृषद् मनुष्यों में प्राणरूप से रहनेवाले वरसद् उत्कृष्ट स्थान में जानेवाले ऋतसद् यज्ञ अथवा सत्य में निवास करनेवाले व्योमसद् आकाशमार्ग में चलनेवाले अब्जा "अप्सु मत्स्यादिरूपेण जातत्वादब्ज उच्यते" इस वचनानुसार जल में मत्स्य इत्यादि रूप धारणकर उत्पन्न होनेवाले अथवा जलराशि जो समुद्र उससे उत्पन्न होनेवाले अथवा "योऽप्सुतिष्ठति"

---

* अग्निवाय्वादित्यानामभेदं वाजसनेयिनः समामनन्ति इस वचनानुसार अग्नि, वायु औ आदित्य में अभेद है इसकारण वेदिषत् कहा ।

इस श्रुति वचन से जल में रहनेवाले स्वयं नारायण। गोजा पृथिवी से उत्पन्न होनेवाले, अर्थात् सूर्यही अग्नि रूप होकर पृथिवी में वास करतेहैं इसकारण सूर्य औ अग्नि में अभेद होने के कारण गोजा कहा जैसे पूर्व में अग्नि औ सूर्य की एकता के कारण वेदिषद् कह आये हैं उसीप्रकार यहां गोजा कहना असंगत नहीहै अथवा "पशुपतयेनमः" इस श्रुति वचन से गऊ इत्यादि पशुओं में वास करनेवाले फिर ऋतजा* ऋत जो यज्ञ उसमें प्रगट होनेवाले परमात्मा, अद्रिजा पर्वत से उत्पन्नवाले अर्थात् अग्निरूप होकर ज्वालामुखी पर्वतों से प्रकट होनेवाले। ऐसे उक्त गुणों से विशिष्ट सूर्यदेव को अथवा परमात्मा को ऋतम् मुझ से दियाहुआ अर्घ्य-जल अथवा यज्ञहवि प्राप्त होवे।

ऋग्वेदवाले अर्घ्यदान के समय निम्नलिखित मंत्र से तेजआकर्षण करतेहैं इसकारण यहां इसका अर्थ कियाजाता है।

ॐ तेजोऽसि तेजोमयी धेहि।

---

* ऋतञ्चसत्यञ्चाभीद्धात्तपसो &c. &c. मंत्र में परमात्मा के तपोरूप बल से सूर्य इत्यादि का उत्पन्न होना प्रसिद्ध है।

टीका—हे सूर्यदेव आप तेजोऽसि तेजस्वरूपही हो इसकारण मुझे भी तेजोऽसिहि अपना तेज धारण कराओ अर्थात् अपने तेजसे मुझको भी तेजस्वी करो।

अथर्ववेदीयप्रातरर्घ्यदानमन्त्रः—

ॐ हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्। अव ताञ्जहि हरसा जातवेदो बिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमारोह सूर्य। श्रीमित्राय इदमर्घ्यं न मम॥ अथर्व कां० १९ अ० ७ सू० ७ मं० १

टी०—सूर्य हे सूर्यदेव हरिः तम के नाशकरनेवाले सुपर्णः रश्मियों से परिपूर्ण अथवा सुन्दर प्रकार से अपने अश्वों के द्वारा आकाश मार्ग में चलनेवाले आप अर्चिषा अपने तेज से दिवम् आकाश को आरुहः* चढ़ो और ये जो मन्देहादि राक्षसगण त्वा आप को दिवं आकाशमार्ग में उत्पतन्तम् चलतेहुए

---

* आरुहः=आङ् उपपद रुह धातु से लुङ् लकार में (कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि) सूत्रानुसार "च्लि" के अङ् आदेश होनेपर गुण के अभाव होने से (आरुहः) बना।

दिप्सन्ति रोकने की इच्छा करतेहैं तान् उन शत्रुओं को जातवेदः हे सूर्य! हरसा आप अपने शत्रुनाशक तेजसे अवजहि नाशकरो और अविभ्यत् शत्रुओं से भय को नहीं करतेहुए उग्रः अत्यन्त बलवान हे सूर्य अर्चिषा अपने तेजसे दिवं द्युलोक को आरोह चढ़ो अर्थात् निर्भय आकाशमार्ग में प्रकाश करतेहुए सुन्दर प्रकार से चलो ।

अथर्ववेदीयसायमर्घ्यदानमन्त्रः—

ॐ अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः। पाशैरङ्किनो ये चरन्ति । तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान्प्रमृणन्पाहि वज्रः ॥

टीका—अयोजाला अयस जो लोहा तिस से बनेहुए जाल के धारणकरनेवाले मायिनः मायावी जो असुर हैं और अयस्मयैः पाशैः लोहमयपाश से अङ्किनः युक्त अर्थात् लोहपाश को हाथ में लेकर ये चरन्ति जो चलतेहैं तान् तिन असुरों को जातवेदः हे सूर्य! ते आपके हरसा तेज से रन्धयामि *

---

* रध्यति वशेगमनेचेति यास्कः ।

मैं वशकरताहूं " अथवा मध्यम पुरुष में होने से आप वशकरें ऐसा अर्थ होगा " एवमप्रकार आपने वशकर सहस्रऋष्टिः सहस्रों ऋष्टि से अर्थात् दोधारा तलवार से वज्रः वज्रवाले आप सपत्नान् शत्रुओं को प्रमृणान् अतिशय करके हनन करतेहुए पाहि हमारी रक्षाकरें।

सूर्योपस्थानमन्त्रार्थः।

ओं उद्वयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवन्देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ शु० य० अ० २० मंत्र २१

टीका—वयम् हम सन्ध्योपासन करनेवाले, तमसस्परि प्रपञ्च से ऊपरि स्थित अर्थात प्रपञ्च से परे अथवा पाप से ऊपर वर्तमान अर्थात् पापों से रहित उत्तरम् अति उत्तम ज्योतिः तेजस्स्वरूप देवत्रादेवम् देवताओं में प्रकाशमान सूर्य को उत्पश्यन्तः अतिशय देखते अथवा उत् ऊपर आकाश में देखते अथवा अपनी उपासनाके बल से साक्षात्कार करतेहुए उत्तमम् अत्यन्त उत्कृष्ट ज्योतिः तेजस्स्वरूप सूर्य्यम् सूर्य को

अगन्म प्राप्तहों. क्योंकि 'तं यथा यथोपासते तदेव भवति' इस श्रुति वचन से जो जिसकी जैसी उपासना करताहै तदाकारही होजाताहै ।

यद्वा तमसस्परि माया के अन्धकार वा पाप से परे उत्तरम् स्वः उत्तरस्वर्ग अर्थात् महानारायणलोक को पश्यन्तः देखतेहुए वयम् हमलोग देवत्रा इस लोक में देवम् नानाप्रकार के अवतारों से क्रीडा करनेवाले ज्योतिः ज्योतिस्स्वरूप उत्तमम् सूर्यम् महा नरायण को उदगन्म प्राप्त होवें । अथवा उत्तरं प्रलय-काल के पश्चात् भी वर्तमान रहनेवाले परमात्मा को जो देवन्देवत्रा देवों में भी देव अर्थात् महादेव है उसके शरणागत हों ।

ॐ उदु॒ त्यं जा॒तवे॑दसन्दे॒वं व॑हन्ति के॒तव॑: । दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य॑म् ॥

शु० य० अ० ३३ मंत्र ३१

टीका—केतवः सूर्य की किरणें. त्यम् उस जातवेदसम् ज्ञान वा धन के उत्पत्तिस्थान अथवा जगत् के जाननेवाले सर्वज्ञ देवम् प्रकाशमान सूर्यम् सूर्य को विश्वाय दृशे सर्व प्राणियों को दर्शन देनेके

लिये अथवा प्राणिमात्र को संपूर्ण जगत के पदार्थों
को स्वच्छरूप से दिखाने के लिये उ निश्चय करके उत्
ऊपर को आकाशमार्ग में, वहन्ति ले चलती हैं ।

अथवा त्वम् जातवेदसम् उस परमात्मा को
जो ऋग, यजुः, साम, अथर्व, चारों वेदों का उत्पत्ति
स्थान है औ इसीकारण जातवेदा नाम करके प्रसिद्ध
है और देवं सर्व का प्रकाशकरनेवाला अथवा संपूर्ण
चराचर में क्रीडाकरनेवाला है विश्वाय प्राणि-
मात्र की ज्ञानदृष्टि की प्राप्ति के लिये उ निश्चय करके
केतवः वेद २ ऋषि महर्षि उद्वहन्ति गानकरते हैं ।
ऐसे परमात्मा को हमलोग प्राप्तहों ।

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकंचक्षुर्मि-
त्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावा पृथिवी
अन्तरिक्षꣳ सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च

शु० य० अ० १३ मन्त्र ४६ ।

टीका—इस मंत्र से सूर्यदेव की स्तुति करतेहैं
कि यह सूर्यदेव कैसेहैं मानों देवानां दैत्यों के हनन
करनेकेलिये देवताओं के चित्रम् अद्भुत अर्थात् आश्च-

र्य्यजनक अनीकम् बलने उद्गात् उदयलियाहै, वह कैसे हैं कि मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः अहराभिमानी देव मित्र, रात्र्याभिमानी देव वरुण औ उभयाभिमानी देव अग्नि इन तीनों देवों के चक्षुः नेत्र अर्थात् प्रकाशक हैं और सूर्यः उस सूर्य ने अपनी किरणों से द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् सुरलोक, मर्त्यलोक औ अन्तरिक्षलोक इन तीनों लोकों को आप्राः अच्छी रीति से पूर्ण कियाहै, फिर वह सूर्य कैसेहैं कि जगतः जङ्गम च और तस्थुषः स्थावरों के आत्मा जीव अर्थात् जिआनेवालेहैं। ऐसे गुणों से युक्त सूर्य देव का मैं अपनी मनोकामना की सिद्धि केलिये उपस्थान करताहूं।

अथवा जो परमात्मा दैत्यों के अर्थात् दुष्कर्मियों औ पापात्माओं के हनन करनेमें आश्चर्य्य बलवालाहै और मित्र, वरुण, अग्नि इत्यादि का चक्षुः प्रकाशात्मक नेत्र है औ स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनों लोकों को आप्रा भली भांति धारणकरनेवाला है औ चराचर का आत्मा है, ऐसे परमात्मा के हमलोग शरणागत हों।

ओं तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् पश्येमशरदः शतञ्जीवेमशरदः शतꣳ

शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शत- मदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्॥ शु० य० अ० ३६ मंत्र २४।

टीका—तत् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चक्षु नेत्ररूप अर्थात् प्रकाश करनेवाले देवहितम् देवताओं के हित-कारक पुरस्तात् पूर्व दिशा में शुक्रम् शुद्ध अर्थात् स्वच्छ औ निर्मल रूप से उच्चरत् उदयहोतेहुए सूर्या-त्मक ब्रह्म हम सन्ध्या करनेवालों पर ऐसी कृपाकरें कि हमलोग शरदः शतम् सौ वर्षतक उनको और ब्रह्माण्डस्थित सकल पदार्थों को पश्येम भलीभांति देखें औ शरदः शतम् सौ वर्षतक जीवेम जीवें शरदः शतम् सौ वर्षतक शृणुयाम सुनें औ शरदः शतम् सौ वर्षतक प्रब्रवाम बोलें औ शरदः शतम् सौ वर्ष-तक अदीनाःस्याम अदीनरहें अर्थात् धन, बल, विद्या, बुद्धि, आरोग्य इत्यादि से हीन होकर दुःखी न हों, सौही वर्षतक नहीं किन्तु शतात् शरदः सौ वर्ष से भूयश्च बहुतकालतक अर्थात् कई सौ वर्षतक उक्त प्रकारही देखें, जीवें, सुनें, बोलें, आनन्द रहें।

अथवा जो परमात्मा सबों का प्रकाशक, सर्व-

हितकारी हैं औ पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् सृष्टि से पूर्वही प्रकाशवान रहतेहुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, रक्षा, औ नाश करनेवालाहै उनकी कृपा से हमलोग सौ वर्षतक देखें, जीवें, सुनें इत्यादि. शेषपूर्ववत् ।

तैत्तिरीयशाखावालों के इस मन्त्र के अन्तिम भाग में कुछ पाठान्तर है इसकारण तैत्तिरीय सन्ध्या-वालों को नीचेलिखे प्रकार से पाठ करनाचाहिये ।

ॐ जीवेम शरदः शतं नन्दाम शरदः शतं मोदाम शरदः शतं भवाम शरदः शतं शृणवाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमजीताः स्याम शरदः शतं ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥ तै० आ० प्र० ४ अ० ४२ ।

टीका—सौ वर्षतक जीवें, सौ वर्षतक नन्दाम पुत्र पौत्र धनादिकों से सन्तुष्ट रहें, सैकड़ों वर्षतक शृणवाम सुनें, सौ वर्षतक प्रब्रवाम बोलें, सैकड़ों वर्ष तक अजीताः स्याम शत्रुओं से अजित होवें अर्थात् शत्रुओं से पराजय नहीं च और ज्योक् चिरकालतक

सूर्य्यम् सूर्यात्मक ब्रह्म को हम देखते रहें हम आशा करते हैं ।

काण्वशाखावालों को निचले दो मंत्रों को अधिक पढ़ना होगा—

ॐ स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्च्चोदा असिवर्च्चोमेदेहि । शु० य० अ० २ मंत्र २६ ।

टीका—हे सूर्य्य के मध्य वर्तमान ज्योतिस्वरूप नारायण आप स्वयम्भूरसि बिना किसी आश्रय के आप से आप उत्पन्न होनेवाले हो औ श्रेष्ठः श्रेष्ठ हो. रश्मिः ज्योतिस्वरूप हो. वर्चोदा असि ब्रह्मतेज के दाता हो, सो तुम मे मुझे वर्च्चः ब्रह्मतेज देही प्रदान करो।

ओमाकृष्णेन रजसावर्त्तमानो नि-वेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हिरण्ययेनसवि-ता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

शु० य० अ० ३३ मंत्र ४३

इस मंत्र का अर्थ पृष्ठ १७७ में होचुका है देखो

तैत्तिरीयशाखावालों को अगले मंत्र अधिक

पढनेहोंगे, किस समय कौन २ मंत्र पढ़नाहोगा बृहत्सन्ध्या में देखलेना।

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतः श्रवो देवस्य सानसिम्। सत्यं चित्रश्रवस्तमम्॥ तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११।

टी०—चर्षणीधृतः वृष्टि द्वारा प्रजाओं को धारण करनेवाले अर्थात् जल बरसाकर अन्नादि की वृद्धि द्वारा सर्वसाधारण प्राणियों की रक्षा करनेवाले, औ मित्रस्य देवस्य अहरभिमानी अर्थात् दिवा के देवता, मित्रनाम सूर्यदेव के, सानसिम् सम्यक्प्रकार भजन करने योग्य, सत्यम् अविनाशी और चित्रश्रवस्तमम् श्रवण करनेवालों को अत्यन्त आश्चर्य औ आनन्द के देनेवाले श्रवः यश की मैं स्तुतिकरताहूं।

ॐ मित्रो जनान्यातयति प्रजानन्मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्। मित्रः कृष्टीरनिमिषाऽभिचष्टे सत्याय हव्यं घृतवद्विधेम॥ तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११।

टीका—यह मित्रः सूर्य प्राणियों के भिन्न २ अधिकार को प्रजानन् जानतेहुए जनान् पुरुषों को भिन्न २ कर्मों में यातयति नियोग करातेहैं अर्थात् अपने २ अधिकारानुसार कर्मों में प्रवेश करातेहैं, ऐसे मित्रः सूर्य भगवान् ने पृथिवीं पृथिवी को उत और द्याम् द्युलोक को दाधार धारण कियाहै और ऐसे मित्रः सूर्य सबको देखतेहुए कृष्टीः सर्वमनुष्यों को और अनिमेष* देवताओं को भी अभिचष्टे सर्वदा देखतेहैं अर्थात् सर्वत्र प्रकाश करतेहैं, इसकारण हम सन्ध्या करनेवाले सत्याश्रय अमोघ फल की प्राप्ति केलिये अथवा सत्यात्मा उस परब्रह्मस्वरूप सूर्य के दर्शन केलिये हव्यम् चरु अर्थात् हवनीय द्रव्य को घृतवत् घृतयुक्त विधेय करतेहैं अर्थात् हवनीय पदार्थों को हवन करनेकेलिये घृत के साथ संयुक्त करतेहैं।

ॐ प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन। न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो

---

* "विभक्तिलोपश्छान्दसः" सूत्र से विभक्ति का लोप होगयाहै।

अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥

तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११ ।

टीका—आदित्य हे सूर्य यः जो यजमान ते आपकी व्रतेन उपासना सम्बन्धि कर्मों के द्वारा शिक्षति कर्मों के अनुष्ठान में समर्थ होने की इच्छा करताहै, मित्र हे सूर्य सः मर्तः वह मनुष्य आपकी कृपा से प्रयस्वान् अस्तु कर्मों के उच्च फलों से युक्त होवे और [illegible] त्वोतः आप से रक्षित होकर न हन्यते रोगादिकों से पीड़ित नहीं होता न जीयते और शत्रुओं से पराजित नहीं होता औ अंहः पाप एनम् उस पुरुष को अन्तितः समीप में नाश्नोति प्राप्त नहीं होता है और दूरात् दूर से भी प्राप्त नहीं होताहै, अर्थात् आप के प्रसाद से अनुगृहीत पुरुष को उक्तप्रकार के क्षुद्रोपद्रव नाश भी नहीं करते ।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवना विपश्यन्

तै० सं० का० प्र० ४ अ० ११ ।

टी०—सत्येन सत्यलोक से अर्थात् देवलोक से औ रजसा रजोलोक अर्थात् मनुष्यलोक से आवर्त्तमानः फिरतेहुए अर्थात् देवलोक से मनुष्यलोक तक प्रकाश करतेहुए यह सविता सूर्य देवलोकवासी जनों के लिये अमृतम् अमरत्व को औ मर्त्यलोक वासी पुरुषों के लिये मर्त्यम् मृत्यु को प्रवेशकरातेहुए हिरण्ययेन रथेन सुवर्णमय रथ पर आरूढ़ होकर भुवना भुवनों को अर्थात् भिन्न २ लोकों को विपश्यन् विशेष करके देखतेहुए अर्थात् सबलोकों को अपनी ज्योति से प्रकाश करतेहुए आयाति हमलोगों के सम्मुख आतेहैं अर्थात् उदयलेतेहैं ऐसे गुणों से सम्पन्न सूर्य की हमलोग स्तुति करें ।

ॐ य उदगान्महतोऽर्णवाद्विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यात्स मा वृषभो लोहिताक्षः सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु ॥

तै० आ० प्र० ४ अ० ४२

टी०—यः जिस सूर्य ने महतः अर्णवात् विशाल समुद्र से उदगात् उदयलियाहै अर्थात् सागर

के जल से निकलतेहुए जो देखलाईदेतेहैं और जो सरिरस्यमध्यात् * सलिल के मध्य से अथवा सलिल के मध्य में विभ्राजमानः दीप्यमान हैं अर्थात प्रकाशमान होतेहैं और जो वृषभः नानाप्रकार के धन सम्पत्तियों के वरसानेवालेहैं औ जो लोहिताक्षः रक्तवर्ण किरणों से युक्त हैं औ जो विपश्चित् पूर्णविद्वान हैं ऐसे सूर्य्यदेव मा मुझको मनसा आदरसे पुनातु अनुगृहीत करें अर्थात् आदरपूर्वक मेरी रक्षा करें ।

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युराचके ॥

तै० सं० का० २ प्र० १ अ० ११

टी०—शुनःशेफनामक ऋषि को यज्ञ के पशु समान वलिदान निमित्त वधने केलिये जिस समय यज्ञ के यूप अर्थात् याज्ञीयपशु के बांधनेवाले काष्ठ में बांधा है उस समय अपने प्राण की रक्षा औ बंधन से छूटने के निमित्त उस ने इसी मंत्र से वरुणदेव की प्रार्थना की है । वरुण हे जलाधीश देव वरुण मेहवम्

---

* यहां मध्यात् सप्तम्यर्थ में पञ्चमी विभक्ति आईहै ।

मेरे आह्वान को शुधि आप सुनें और अद्य आज मृडय मेरे बन्धन को खोल आप मुझे सुखी करें अवस्युः त्वाम् आचक्षे मैं अपनी रक्षा को चाहते-हुए यही आपकी प्रार्थना करताहूं ।

ॐ तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒-स्तदाशा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑ । अहे॑ड-मानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शꣳस॒ मा न॒ आयुः॒ प्रमो॑षीः ॥ तै० सं० का० २ प्र० १ अ० ११ ।

टी०—तत् पूर्व मन्त्रोक्त अपनी रक्षा केलिये ब्रह्मणा वैदिक मंत्र से वन्दमानः स्तुतिकरतेहुए त्वा-यामि आप के शरणागत होताहूं क्योंकि आप भक्तों के रक्षक हैं इसकारण मुझ शरणागत आयेहुए की रक्षा करें अन्यथा 'लोभाद्वाथभयाद्वापि यस्त्यजे-च्छरणागतान् । ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहु-र्मनीषिणः' इस वचनानुसार जो लोभ से वा भय से शरणागत आयेहुओं की रक्षा न करके परित्याग कर-ताहै वह ब्रह्महत्या के समान पाप का भागी होताहै, यह शिष्टों ने कहाहै इसकारण केवल मैंही उस रक्षा

को नहीं चाहता किन्तु जितने यज्ञकरनेवाले यजमानहैं वेभी उसी रक्षा की आशा करतेहैं, इसीको आगे दृष्टान्त है । यजमानः यज्ञकरनेवाला यजमान हविर्भिः आज्यादि हवन के द्रव्यों से तत् उस रक्षा को आशास्ते याचना करताहै इसकारण आप अवश्य सुखी करें । और वरुण हे जलाधीश! आप अहेडमानः अनादर नहीं करनेवाले अथवा क्रोध नहीं करनेवाले हो सो आप इह इसलोक में बोधि मेरी याचनाको समझो अर्थात् अङ्गीकार करें औ हे उरुशंस बहुत प्रशंसा के योग्य आप नः हमारे आयुः आयुर्बल को माप्रमोषीः मत नाश करें अर्थात् शतंवै पुरुषः औ जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदःशतं इत्यादि वेदोक्त आयुर्बल को अर्थात् कम से कम सौ वर्ष का आयुर्बल आप हमको देवें । नः यहां बहुवचन निर्देश यजमानादि की अपेक्षा से है अन्यथा यामि इस पद से पूर्वापर विरोध होजावेगा ॥

ओं यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥

तै० सं० का० २ प्र० ४ अ० ११ ।

टी०—देव वरुण हे जलाधीश देव वरुण! ते आप के सम्बन्धि यच्चितव्रतम् जिन २ परिचर्य्यारूप कर्म को प्रमिनामि प्रतिदिन हम प्र अतिशय करके मिनीमसि हनन करतेहैं अर्थात् जिन कर्मों को पूर्ण रूप से करना चाहिये उनको आलस्य वश पूर्ण रूप से न करके उनके अङ्गों का उलंघन करतेहैं हमारे ऐसे अपराध को आप क्षमा करें, कैसे क्षमा करें उसे कहतेहैं कि विशः यथा जैसे दयालु स्वामी से अपराधी प्रजा अनुगृहीत होतीहै तैसेही हमारे अपराधों को भी आप क्षमाकर हमको अनुगृहीत करें।

ॐ यत्किंचेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि। अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मानस्तस्मादेनसो देव रीरिषः॥ तै० सं० का० २ प्र० ४ अ० ११।

टी०—वरुण हे जलाधीश देव! दैव्येजने द्युलोकवर्त्ती जनों के साथ अर्थात् देवताओं के साथ यत्किञ्च जोकुछ थोड़ा वा वहुत इदम् अभिद्रोहम् इस द्रोह को अर्थात् पूर्व मंत्रकथित कर्मपरित्यागरूप

दोष को मनुष्याः हम मानव अर्थात् मनुष्य होने के कारण अचित्ती अज्ञान से चरामसि करतेहैं और तव आपके यत्धर्म्मा जिस धर्म को हम युयोपिम विनाश करतेहैं, तस्मादेनसः उस पाप के कारण देव हे देव वरुण! नः हमको मारीरिषः मतहिंसाकरो अर्थात् धर्मलोपहेतुक दोष को दूरकर हमलोगों को सम्यक्प्रकार से पालन करो ॥

ॐ कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म। सर्वा ता विष्य शिथिरेव देवाथा ते स्याम वरुण प्रियासः॥ तै० सं० का० ३ प्र० ४ अ० ११।

टी०—कितवासः धूर्त्तसदृश स्वार्थसाधन में तत्पर हम ऋत्विकों ने कर्म के यत् जिस अङ्ग को रिरिपुः नाशकिया अर्थात् यागकरने में ऋत्विक्ता स्वीकार करके हमने यज्ञ के अङ्गभूत कर्मों को परिश्रम के भय से वा लोभ से त्यागदिया और नदीवि विधि पूर्वक उन कर्मों में न प्रवृत्त हुए घा 'पाद पूर्ति के अर्थहै' वा अथवा यत् जो पाप अज्ञानता के कारण

सत्यम् हम से अवश्यकियेगये, उत और यत् जो अनेकप्रकार के धर्मों को नविद्य हम नहीं जानते अर्थात् चारोंवर्णों औ चारों आश्रमों के धर्मों मे जोकुछ हम नहीं जानते तासर्वा तिन सब पापों को विष्य आप विशेषकर हमसे दूरकरें अर्थात नाशकरें, और शिथिरेव शिथिल अर्थात क्षुद्र पाप छोटे २ जोकुछ हम से हुएहों उनको भी आप नाशकरें अथ और आप के ऐसे अनुग्रह के पश्चात् वरुणदेव हे जलाधीश देव! ते आप को प्रियासः स्याम हमलोग प्रिय होवें।

(ॐ इमं मे वरुण से किनवासो यद्रिरिपुः तक पांच मंत्रों को आचार्यों ने सूर्योपस्थान के निमित्त रखाहै किन्तु इन सब मंत्रों में वरुणदेव को सम्बोधन कर वरुण से प्रार्थना कीगई है इस से बोधहोताहै कि ये मंत्र वरुणोपस्थान के हैं फिर इन से सूर्योपस्थान क्यों कियागया, तो उत्तर यहहै कि 'वारुणीभिरादित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणमिति' इस वचन के अनुसार वरुण सम्बन्धि मंत्रों से भी सूर्योपस्थान करसक्तेहैं क्योंकि 'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः' इस वेदमंत्र के अनुसार सूर्य वरुणदेव के नेत्र ही हैं फिर दोनों में अन्तर न होने के कारण एक के मंत्र से दूसरे के उपस्थान करने में कोई हानि नहीं) ॥

ॐ मित्रो देवेष्वायुषु जनांय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥४॥

(ऋ. सं. अ. ३ अ. ४ व. ६)

टी०—देवेषु दानादिगुणों से युक्त आयुषु मनुष्यों में वृक्तबर्हिषे जिस मनुष्य ने यागादि अथवा सन्ध्यादि कर्म करने के लिये कुशछेदन कियाहै अर्थात् पवित्र इत्यादि धारणकर सन्ध्यादि कर्मो में प्रवृत्त है जनाय ऐसे पुरुषके लिये मित्रः सूर्य देव इष्टव्रताः मंगलमय यज्ञ के सिद्धकरनेवाले इषः अन्नों को अकः देतेहैं ।

अथवा हे मनुष्यो ! मित्रः जो सूर्यदेव अथवा ईश्वर 'देवेषुआयुषु' दिव्येषु जीवनेषु ! उत्तम जीवन में जनाय उन मनुष्यों की इषः इच्छाओं को अकः पूर्णकरताहै जो वृक्तबर्हिषे सन्ध्यादि ब्रह्मयज्ञकेलिये जल छोड़तेहुए अर्थात् संकल्पकरतेहुए इष्टव्रताः अपने कर्मों की सिद्धि की इच्छाकरतेहैं, ऐसे सूर्यदेव की सेवा करो ॥

ॐ उदुत्यंजातवेदसन्देवं वहन्तिकेतवः ।

(इस मंत्र का अर्थ १८४ पृ० में होचुकाहै पाठकगण देखलेंगे)

ॐ तच्छंयोरावृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वस्तिर्मानुषेभ्यः। ऊर्ध्वं जिगातु भेषजं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

टी०—हे देवगण! तत् वह यः जो प्रसिद्ध शं सर्वदुःखों से रहित इसलोक औ परलोक का सुख है उसे आपलोगों से आवृणीमहे हम याचना करतेहैं, किस काज केलिये उसे कहतेहैं, यज्ञाय अग्निष्टोमादि याग की सिद्धि केलिये और गातुं आपके गुणगानकरने के लिये और गातुं यज्ञपतये यज्ञपति परमेश्वर का कीर्तन करनेकेलिये। फिर हमलोगों केलिये दैवीस्वस्तिरस्तु दैवी कल्याण प्राप्त होवे अर्थात किसी देव का कोप हमलोगों पर न होवे और स्वस्तिर्मानुषेभ्यः हमलोगों के सम्बन्धी जो मनुष्यहैं उनसबों का कल्याण होवे औ ऊर्ध्वंभेषजम् उत्कृष्ट औषध अर्थात उत्तम उत्तम औषधियां हमलोगों के प्रति जिगातु नित्यप्रति आवें अर्थात प्राप्त होवें और नः हमलोगों के द्विपदे पुत्रादिकों के लिये और चतुष्पदे गोमहिषादिकों के लिये शं अस्तु कल्याण होवे ॥

ॐ नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः । नमो वाचे नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि ॥

शा० गृह्यसू० अ० ३ ॥

टी०—नमोब्रह्मणे बृंहयति वर्धयति चतुर्दश भुवनानि । जो चौदहों भुवन को अपनी अनन्तशक्ति से विस्तार करताहै एसे ब्रह्म को मेरा नमस्कार है, नमो अस्त्वग्नये अग्निदेव के लिये मेरा नमस्कार है, नमः पृथिव्यै पृथिवी के लिये मेरा नमस्कार है, नमः ओषधीभ्यः औषधियां जो अन्नादि के मूल हैं उनके लिये मेरा नमस्कार है, नमोवाचे वाक्शक्ति जो सरस्वती उसकेलिये मेरा नमस्कार है, नमो वाचस्पतये सरस्वती के पति जो ब्रह्मा उनके लिये मेरा नमस्कार है, फिर महते समस्त देवताओं से पूज्य जो विष्णवे विष्णुभगवान् उनके लिये नमः करोमि मैं नमस्कार करताहूं ॥

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥१॥

('ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतः' से 'ॐ मित्रो देवे-ष्वायुषु' तक के सब मन्त्र 'ऋग्वेद अष्ट० ३ अध्याय ४ वर्ग ६' के हैं।)

टी०—चर्षणीधृतः वृष्टिद्वारा सम्पूर्ण जगत के पालनेवाले, सबके हितकारक औ अव सेवनीय, तथा सानसि सबों से स्तुति कियेजाने के योग्य, औ चित्र-श्रवस्तमम् नानाप्रकार के यश औ कीर्ति से युक्त मित्रस्य देवस्य सूर्यदेव के यश को मैं गानकरताहूं, वह सूर्यदेव मेरे द्युम्नं धन की रक्षाकरैं औ उसके साथ साथ मेरी भी रक्षा करैं॥

ॐ अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः। अभिश्रवोभिः पृथिवीम् २

टी०—यः मित्रः जो सूर्य सप्रथाः ख्यातियुक्त हैं अर्थात् अत्यन्त प्रसिद्ध हैं औ महिना जो अपनी महिमा से दिवं आकाश में अभिबभूव व्यापकर

सर्वत्र वर्तमान हैं और अन्नेभिः पृथिवीम् वृष्टिद्वारा अन्नों को उत्पन्न कर सम्पूर्ण पृथिवीमण्डल में अभि-चभूव वर्तमान हैं, ऐसे सूर्यदेव का मैं उपस्थान करताहूं ॥

ॐ मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्विभर्त्ति ॥ ३ ॥

टी०— पञ्चजना पांचवांवर्ण जो निषादादि अथवा मन्देहादि जो प्रबल शत्रु हैं ऐसे शत्रुओं के अभिष्टिशवसे सम्मुखजाने के बल को रखनेवाले मित्राय येमिरे सूर्यभगवान के लिये हम हविष्य प्रदान करतेहैं, सः वह सूर्य कैसे हैं कि विश्वान्देवान् सब देवताओं को अपने २ रूप के अनुसार बिभर्ति धारणकरतेहैं ॥ अथवा जना विद्वान पुरुष अभिष्टिशवसे आभिष्टवल अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र प्राप्ति के बल से मित्राय जिस ब्रह्मज्योतिरूप सूर्य केलिये पञ्चयेमिरे पांचों प्राणों को संयम करतेहैं सः वह सूर्य देवान्विश्वान् सर्वदेवताओं को अर्थात् सर्वप्रकार के अद्भुत-समर्थ को बिभर्ति धारण करतेहैं अथवा पोषण करतेहैं ॥

ॐ सिद्धो देवेष्वहुतु जनाय यज्ञं वहिः । इदं इष्टकामा अकः ॥४॥

(ऋ. मं. ३ अ. ४ व. ६)

टी०—देवेषु ज्ञानादिगुणों से युक्त आयुष्य मनुष्यों में हुतवहिः जिस मनुष्य ने आत्मादि अथवा मान्यादि कर्म यज्ञ के लिये कुशोदक दिया है अर्थात् पवित्र इत्यादि धारणकर मान्यादि कर्म में प्रवृत्त है जनाय ऐसे पुरुषोंके लिये सिद्धः पूर्ण देव इष्टकामाः मंगलमय यज्ञ के सिद्धकरनेवाले इष्टः कर्मों को नष्टः देवें ।

अथवा हे मनुष्यो ! सिद्धः जो पूर्णदेव अथवा ईश्वर 'देवेष्वहुतु' दिव्यगुण धारणेन्द्र ! उत्तम जीवन में जनाय उन मनुष्यों को इष्टः इच्छाओं को अकः पूर्णकरनेवाले जो हुतवहिः मान्यादि उत्तमकर्मोंमें जन होनेवाले अर्थात् पवित्रकरनेवाले इष्टकामाः अपने कर्मों की सिद्धि की इच्छाकरनेवाले, ऐसे पूर्णदेव की सेवा करो ॥

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

(इस मंत्र का अर्थ १८४ पृ० में होचुकाहै पाठकगण देखलेवेंगे)

ॐ अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑ । सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे ॥ २ ॥

(इस मंत्र से लेकर 'प्रत्यङ्देवानां विशः' तक के सब मंत्र ऋ० सं० अष्ट० १ अध्याय ४ व० ७ के हैं)

टी०—विश्वचक्षसे संपूर्ण विश्व के प्रकाशक सूराय सूर्य के आगमन को देख यथातायवः बडे २ प्रसिद्ध चोरों के समान त्येनक्षत्रा वे सब नक्षत्र अर्थात् तारा गण अक्तुभिः रात्रि के साथ २ अपयन्ति भागजाते हैं, अर्थात् सूर्यदेव की प्रचण्ड किरणों की महिमा को जान कर जैसे रात्रि पलायमान होतीहै उसी के साथ २ तारागण भी तस्करों के समान भाग जातेहैं ॥

ॐ अदृ॑श्रमस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जना॒ँ॥ अनु॑ । भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥ ३ ॥

टी०—अस्य इस सूर्य के केतवः आगमन की सूचनकरानेवाली रश्मयः किरणें जनान् लोक लोका-न्तरनिवासी जनों को अनुव्यदृश्रं क्रम से प्रकाश

प्रदान करता है, किसप्रकार प्रकाश करताहै उसे कहतेहैं, कि भ्राजन्तो अग्नयो यथा जैसे लहरती-हुई आग रात्रि के समय प्रकाशकरताहै ॥

ॐ तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमाभासि रोचनम् ॥४॥

टी०—तरणिः—तरिताऽन्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्ताऽसि, अर्थात् हे सूर्य आप दूसरों से नहीं चलनेयोग्य जो मार्ग उस विशाल मार्ग के चलनेवाले हैं प्रमाण०—योजनानां सहस्रे द्वे द्वेशते द्वे च योजने । एकेन निमिषार्धेन क्रममाणो नमोऽस्तु ते ॥ अर्थात् आधे निमेष पल में जो आप दो हजार दो सौ दो योजन अर्थात् आधे पल में ८८०८ मील के चलनेवाले हैं सो आप को मेरानमस्कार है, अथवा तरणिः 'उपासकानां रोगात्तारयिताऽसि' आप अपने सेवकों को रोगों से रहितकरनेवाले हैं प्रमाण०—'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' अर्थात् आरोग्य की इच्छा सूर्यदेव ही से करे, फिर आप कैसे हैं कि विश्वदर्शतो सर्व लोक लोकान्तर के

प्रकाश करनेवाले हैं अथवा सर्व प्राणियों से देखेजाने के योग्य है. क्योंकि 'चाण्डालादिदर्शने ज्योतिषां दर्शनम्' आपस्तम्ब के सूत्रानुसार, सब मनुष्यों को चाहिये कि यदि किसीदिन चाण्डालादि का दर्शन होजावे तो शीघ्रही सूर्य का दर्शन करलेवें इसीकारण सूर्य को विश्वदर्शतः कहा, फिर हे सूर्य आप ज्योतिष्कृदसि संपूर्ण वस्तुओं के प्रकाश करनेवालेहैं, विशेषकर चन्द्रमा इत्यादिकों को भी रात्रि समय प्रकाश देनेवाले हैं क्योंकि बुद्धिमानों पर विदित है कि 'रात्रौहि अम्मयेषु चन्द्रादि बिम्बेषु सूर्यकिरणाः प्रतिफलिताः सन्तो ऽन्धकारं निवारयन्ति यथा द्वारस्थितदर्पणे पतिताः सूर्यरश्मयो गृहान्तर्गतं तमो निवारयन्ति तद्वदिति' अर्थात् जैसे द्वारपर रखेहुए दर्पण में सूर्य की किरणें पड़कर घर के भीतरवाले अन्धकार को नाशकरती हैं उसीप्रकार रात्रि के समय जलमय चन्द्रादि बिम्बों में सूर्य की किरणें पड़कर अन्धकार को नाश करतीहैं. तात्पर्य यह कि चन्द्रमा के सहित जितने तारागण हैं इन सबों में सूर्य ही के प्रकाश से प्रकाश देखपड़ता है इन में अपना प्रकाश कुछ भी नहीं है इसलिये सूर्य को 'ज्योतिष्कृत्' कहा। इसी कारण फिर रोचनं सम्पूर्ण आकाश को

हे सूर्य ! आपहि आप अपने प्रकाश से प्रकाशमान करतेहैं सो आपको नमस्कार है* ।

ॐ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ ५ ॥

(ऋ. मं. अ. १ अ. ४ व. ७)

टी०—हे सूर्य देवानांविशः देवताओं की प्रजा जो मरुत्संज्ञक देवहैं प्रत्यङ् उदेषि तिनके सन्मुख आप उदयहोतेहैं, औ मानुषान् मनुष्यों के प्रत्यङ् सन्मुख भी आप उदयहोतेहैं, इसीप्रकार विश्वं स्वः सम्पूर्ण स्वर्गलोक को दृशे देखनेके लिये प्रत्यङ् स्वर्गवासियों के सन्मुख आप उदयहोतेहैं. तात्पर्य यह कि तीनोंलोक के रहनेवाले सूर्य को अपने २ सन्मुख उदयहोते देखतेहैं 'तस्मात्सर्वएव मन्यते मां प्रत्यु-दगात्' इसलिये सब यही जानतेहैं कि मेरे ही सन्मुख सूर्य ने उदयकियाहै । ऐसे अद्भुत चरित्रवाले सूर्य को मेरा नमस्कार है ॥

* 'सो आप को मेरा नमस्कार है' यह वाक्यपूर्ति के निमित्त ऊपर से योजना कियागयाहै मूल में स्पष्टरूप से नहीं दि गई ॥

ॐ येना॑ पावक॒ चक्ष॑सा भु॒रण्य॑न्तं॒ जना॒ँ अनु॑। त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि ॥ ६ ॥

(इस मंत्र से लेकर 'ॐ उद्गाद्यमादित्यो विश्वेन' तक के सब मंत्र ऋ० सं० अष्ट० १ अध्याय ४ व० ८ के हैं)

टी०—पावक वरुण * हे सर्व लोकों के पवित्रकरने वाले सर्व अनिष्ट के निवारण करने वाले सूर्य त्वं आप भुरण्यन्तं सर्व प्राणियों को धारणकरते हुए सर्वलोकों को येनचक्षसा जिस प्रकाश से अनुपश्यसि अवलोकन करतेहैं अर्थात् प्रकाश करते हैं उस प्रकाश को मेरा नमस्कार है ॥

ॐ वि द्यामे॑षि॒ रज॑स्पृ॒थ्वहा॒ मिमा॑नो अ॒क्तुभिः॑। पश्य॒ञ्जन्मा॑नि सूर्य ॥ ७ ॥

टी०—सूर्य हे आदित्य आप अहाअक्तुभिः दिन को रात्रि से मिमानः विभागकरतेहुए औ पश्य-

---

* वरुण औ सूर्य में अन्तर नहीं है एक की स्तुति से दूसरे की भी स्तुति समझीजातीहै पृ० १९९ में दिखलाआयेहैं ॥

न्जन्मानि सब प्राणियों के जन्म जन्मान्तर के कर्मों को देखतेहुए अर्थात् पाप पुण्य कर्मों के साक्षीभूत होतेहुए पृथु विस्तीर्ण द्याम् अन्तरिक्षलोक औ रजः भूलोक इत्यादि लोकों को विएपि 'व्येषि' जातेहैं, सो आप को मेरा नमस्कार है।

ॐ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

टी०—देवसूर्य हे सूर्यदेव! विचक्षण लोकों को प्रकाश करनेवाले औ शोचिष्केशम् तेजही है केश के समान जिन में ऐसे सप्तहरितः * सातघोड़े त्वा आपको रथे रथ में लगेहुए "अथवा सात विशेष किरणें आप को चारोंओर से घेरेहुए" इसस्थान में वहन्ति प्राप्त करातेहैं, अर्थात् जहां २ लोक लोकान्तर में आप के जाने की इच्छा होती है वहां २ लेजातेहैं॥

ॐ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ९

* 'हरित आदित्यस्य' इस निघण्टु के वचनानुसार 'हरित' सूर्य के किरणों को भी कहतेहैं॥

टी०—सूरः सर्व जीवों के प्रेरक सूर्यदेव ने सप्तशुन्ध्युवः सात घोड़ियों को अयुक्त अपने रथ में जोड़ा, वे सातों घोड़ियां कैसीहैं कि रथस्य नप्त्यः रथ को नहीं गिरानेवाली हैं, किन्तु बड़ी चतुराई से विमानमार्ग में लेचलनेवाली हैं, सो ऐसे सूर्यदेव ताभिः स्वयुक्तिभिः अपनी जोड़ीहुई उन घोड़ियों से लोक लोकान्तर को याति जाते हैं तिनको मैं स्तुति करताहूं ॥

ॐ उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त

(इसका अर्थ १८३ पृ० में होचुका है पाठकगण देखलेवेंगे)

ॐ उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् । हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

टी०—सूर्य हे सूर्यदेव! मित्रमहः सर्वप्राणियों के मन को रंजन करनेवाली कान्ति से युक्त अद्य आज उद्यन् उदय लेकर उत्तरांदिवम् अति ऊर्ध्व आकाश को आरोहन् प्राप्ति करतेहुए अर्थात् आकाश

मार्ग में गमन करतेहुए आप सम मेरे हृद्रोगं हृदय के रोग को अर्थात् काम, क्रोध, चिन्ता, द्वन्द्व, राग द्वेषादि मानसरोग को च और हरिमाणं शारीरिक बाह्यरोग को जिस से शरीर का रुधिर भ्रष्ट होकर हरितवर्ण होजाताहै नाशय नाशकीजिये, अर्थात् इस सन्ध्या करनेवाले सेवकों के मानसिक औ शारीरिक दोनों प्रकार के रोगों को नाशकीजिये ॥

ॐ शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥१२॥

टी०—हे सूर्यदेव! मेहरिमाणं मैं अपने रोगग्रस्त शरीर की हरियाई को शुकेषु हरितवर्ण की इच्छा करनेवाले शुकनामक पक्षियों में औ रोपणाकासु सारिकाओं में दध्मसि स्थापन करताहूं, अथो अथवा मेहरिमाणं मैं अपने शरीर की हरियाई को हारिद्रवेषु हरितवर्णवाले कदम्ब के वृक्षों में निदध्मसि स्थापन करूं। अर्थात आप की कृपा से मेरे शरीर की हरियाई उक्त स्थानों में चलीजावे मुझको बाधा न करे ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेनसहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥

ऋ. सं. अ. १ अ. ४ व. ८)

टी०—अयं आदित्यः अदिति के पुत्र सूर्यदेव ने (विश्वेन सहसा सह) अपने पूर्ण बल के साथ मह्यंद्विषन्तं मेरे दुख देनेवाले रोगों का रन्धयन् नाशकरतेहुए उदगात उदयहोलियाहै, क्योंकि अहं मैं स्वयं मेद्विषते अपने दुखदेनेवाले रोगों का मारधम् नाश नहीं करसकता अर्थात् मैं अपने रोगों को आप नाशकरने में असमर्थ हूं इसलिये सूर्यदेव ही कृपाकर मेरे रोगों को नाशकरें ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकंचक्षुर्मि

(इस मंत्र का अर्थ १८९ पृ०में होचुकाहै पाठकगण देखलेवेंगे)

(अब जानना चाहिये कि 'ॐ चित्रं देवानामुद्गादनीकं, से लेकर 'ॐ अद्यादेवा उदिता' तक के सब मंत्र ऋग्वेद अष्ट० १ अध्या० ८ व० ७ के हैं)

ॐ सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्। यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२॥

टी—सूर्यः सूर्यदेव जब रोचमानां अत्यन्त मनोहरा दीप्यमाना देवीमुषसम् ऊषादेवी के पश्चात् पीछे २ अभ्येति चलतेहैं तब कैसी शोभा होतीहै मानो मर्यो न योषाम् कोई पुरुष किसी सुन्दरी स्त्री के पीछे २ चलताहो, तात्पर्य यह कि प्रातःकाल होने के समय ऊषा के पीछे २ सूर्य का उदयलेना अत्यन्तही मनोहर देखपड़ताहै यत्र जिस प्रातःकाल के होनेपर देवयन्त नरः देवयज्ञकरनेवाले मनुष्य युगानि = युग्मानि युग्महो अर्थात् अपनी २ स्त्रियों के सहित मिल भद्रम् कल्याणकारक अग्निहोत्रादि कर्मों को भद्राय मंगल प्राप्तिकेलिये प्रति यज्ञकेएक २ अङ्ग

को विस्तृत विस्तार करते हैं अर्थात् उत्तमफल प्राप्ति के लिये अग्निहोत्रादि कर्मों को विधिपूर्वक करते हैं ॥

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः। नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

टी०—भद्रा कल्याण के करनेवाले अश्वा सर्वत्र व्यापनेवाले हरितः हरितवर्ण चित्रा अद्भुत अनुमाद्यासः अनुक्रम से प्राणिमात्र से स्तुति कियेजाने योग्य एतम् गन्तव्य मार्ग के चलनेवाले एतग्वा सूर्य के घोड़े नमस्यन्तः हमलोगों से नमस्कारलेतेहुए दिवः पृष्ठम् आकाश के पृष्ठभाग पर आस्थुः स्थिर होतेहैं। (अथवा हरितः सर्वप्रकार के रसों को ग्रहण करनेवाली किरणें आकाश के पृष्ठभागपर स्थिर होती हैं अर्थात् संपूर्ण आकाश में व्यापतीहैं) इस पक्ष में उक्त सब विशेषण जो प्रथम एतग्वा शब्द के थे अब सब हरितः शब्द के होंगे और ऐसी दशा में एतग्वा

शब्द का अर्थ 'विशालमार्ग की चलनेवाली' होगा) ये सूर्य के घोड़े अथवा सूर्य की किरणें द्यावापृथिवी आकाश से पृथिवी तक सद्यः एकही दिन में परियन्ति चारों ओर से व्याप जातीहैं तात्पर्य यह कि एकही दिन में सूर्य की किरणें अपने प्रकाश को आकाश और पृथिवी की सब दिशाओं में व्याप्त करदेतीहैं ॥

ॐ तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं संजभार । यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ४

टी०—सूर्यस्य सर्वप्रेरक आदित्य की देवत्वं स्वतन्त्रता औ महित्वं महिमा तत् यही है यत् जो कर्तोर्मध्या नाना प्रकार के कृषि इत्यादि कर्मों के मध्यही में अस्ताचल को गमनकरतेहुए विततं अपनी फैलीहुई किरणों को सञ्जभार खींचलेतेहैं, तात्पर्य यह कि नानाप्रकार के कार्यकरनेवाले जो प्रातःकाल से अपने कार्य को आरंभकरतेहैं वह कार्य पूर्ण नहीं होनेपाता कि बीचही में सूर्यदेव अस्ताचल को चलतेहुए अपना प्रकाश रोकलेतेहैं ऐसी स्वतन्त्रता सूर्यदेव को छोड़ और किस में है, किसी में भी नहीं।

फिर यदेत् जिसी काल में सूर्यदेव अपनी हरितः किरणों को अथवा हरितवर्ण घोड़ों को सधस्थात् अपने रथ से अयुक्त छोड़देतेहैं और उसके पश्चात्‌ही रात्री निशा वासः आच्छादन करनेवाले तम को अर्थात् अन्धकार को सिमस्मै उन सब स्थानों में, जिधर से वे किरणों को खींचलेतेहैं, फैलादेतीहै अर्थात् सर्वत्र रात्रि होजाती है ॥

ॐ तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे । अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः संभरन्ति ॥ ५ ॥

टी०—मित्रस्य वरुणस्य हिंसा से रक्षाकरनेवाले दिनाभिमानी मित्रदेव और जलदाता वरुणदेव, दोनों देवों से उपलक्षित जो सूर्यः सूर्यदेव वह तत् उस अपने उदयलेने के समय अर्थात् प्रातःकाल अभिचक्षे सम्पूर्ण जगत के सम्मुख द्योः आकाश के उपस्थे बीच में रूपं अपने तेज को कृणुते व्याप्त करतेहैं अर्थात् सूर्यदेव प्रातःकाल अपना उदयहोना

सम्पूर्ण विश्व पर प्रकट करनेकेलिये अपने प्रकाश को आकाश के मध्य में फैलातेहैं, अस्य ऐसे सूर्यदेव के हरितः हरितवर्ण घोड़े अथवा रसों की खींचनेवाली किरणें अनन्तं असीम विश्वव्यापक रुशत् दीप्यमान श्वेतवर्ण पाजः रात्रि के अन्धकार को नाश करने में अत्यन्त प्रबल तेज को सम्भरन्ति निज आगमन से उत्पन्न करतीहैं, इसीप्रकार कृष्णं कृष्णवर्ण अन्धकार को रात्रि में निज प्रस्थान से सर्वत्र फैलादेती हैं अर्थात् सूर्य की किरणें उदय के समय प्रकाश को और अस्त के समय अन्धकार को सर्वत्र फैलादेतीहैं। तात्पर्य यह कि जब सूर्य की किरणों की इतनी महिमाहै तो स्वयं सूर्यदेव की महिमा को कौन वर्णन करसकताहै ॥

ओ॒म् अ॒द्या दे॑वा॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य॒ निरंह॑सः पिपृ॒ता निर॑व॒द्यात् । तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ६ ॥

टी०—देवा हे प्रकाशमान सूर्य की किरणें अद्या आज इस सन्ध्याकाल में सूर्यस्य उदिता सूर्य के उदय

होनेपर इधर उधर फेकतीहुई जो आपलोग सो हमलोगों को अवद्यात् निन्दनीय अंहसः पाप से निष्पिपृर्त्त निकालकर रक्षाकीजिये और हमलोगों ने यह याचना जो कीहै सो नः हमलोगों की तत् इस याचना को मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी, द्यौ ये छवों देवता पूर्ण करतेहुए मामहन्ताम् हमलोगों को संसार में पूज्य करें अर्थात् हमलोगों का सर्वत्र सन्मान होवे।

("ॐ तच्चक्षुर्देवहितं" से 'यच्चिद्धिते' तक का अर्थ होचुकाहै सूचीपत्र द्वारा देखो)

ॐ मा नो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे॥

(इस मंत्र से लेकर 'ॐ कदा क्षत्र श्रियं' तक के सब मंत्र 'ऋग्वेद अष्ट० १ अध्या० २ व० १६' केहैं)

टी०—हे सूर्यदेव जिहीलानस्य जिस ने अर्घ्यदान अथवा उपस्थान इत्यादि कर्म न करके आप का अनादर कियाहै ऐसे पापी के अथवा अनादर करते हुए पापी के हत्नवे हनन करनेमें आप समर्थ हैं सो

आप दयाकरके नः हमलोगों को वधाय वधका विषय मत कीजिये अर्थात् मारीरथः हम अपराधियों की हिंसा आप न कीजिये और हृणानस्य कोप करतेहुए आप मन्यवे अपने कोन का विषय हमलोगों को मत कीजिये. तात्पर्य यह कि हम लोगों से जोकुछ दोष कर्म परित्याग का हुआहो उसे आप क्षमा कीजिये ॥

ॐ वि मृ॒ळी॒काय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न संदि॑तम् गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥

टी०—वरुण हे वरुण अथवा हे सूर्यदेव जैसे रथी रथपर चढ़नेवाला रथ का स्वामी सान्दितम् दूरगमन से थके हुए अश्वं घोड़े को घासादि देकर प्रसन्न करताहै, न इसीप्रकार मृळीकाय हमलोग अपने सुख केलिये ते आप के मनः मन को गीर्भिः स्तुतियों से विसीमहि विशेषकर बांधतेहैं अर्थात् प्रसन्न करतेहैं ॥

ॐ परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑इष्टये । वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥

टी०—हे सूर्यदेव वयोन जैसे पक्षियां वसतीः अपने निवास स्थान के उप समीप में सायंकाल को आ पहुंचती हैं इसीप्रकार से मेरी विमन्यवः क्रोधरहित बुद्धियां वस्यइष्टये पूर्ण आयु लाभकेलिये परापतन्ति आप के चरणकमलों के समीप आपहुंचती हैं अर्थात् मेरी बुद्धि आप से यही प्रार्थना करती है कि मेरी आयु अधिक हो ॥

ॐ कुदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥

टी०—मृळीकाय अपने सुख की प्राप्तिकेलिये क्षत्रश्रियं अत्यन्तवलवान नरमा नायक औ उरुचक्षसम् बहुदर्शी वरुणं वरुणदेव को अथवा सूर्यदेव को कदा किसीकाल में अर्थात् उपस्थान करने के समय आकरामहे हमलोग आवाहन करतेहैं

ॐ तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्रयुच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥

(इस मंत्र से लेकर 'ॐ निषसाद धृतव्रतो' तक के सब मंत्र ऋग्वेद अष्ट० १ अ० २ व० १७ केहैं)

टी०—धृतव्रताय यागकारी दाशुषे हविष्य देनेवाले यजमान केलिये वेनन्ता इच्छा करतेहुए वरुण औ मित्र नामक दोनों देव समानं साधारण हमलोगों से दियेहुए हविष्य को नमयुच्छतः कबही नहीं भूलतेहैं किन्तु आशांत प्रेम से ग्रहण करतेहैं ॥ तात्पर्य यह कि ये दोनों देव बड़े २ यज्ञकर्ता महर्षियों के हविष्य के ग्रहण करनेवालेहैं तो क्या हमलोग साधारण पुरुषों के हविष्य को भूलजावेंगे ! कदापि नहीं, किन्तु दयाकरके हमलोगों के हविष्य को भी ग्रहण करेंहींगे ॥

ॐ वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥

टी०—यः जो वरुणदेव अन्तरिक्षेण आकाश मार्ग से पतताम् गगनकरतेहुए वीनां पक्षियों के पदम् स्थान को वेद जानतेहैं औ समुद्रियः समुद्रमें स्थित होकर जल में जातीहुई नावः नउका के स्थान को वेद जानते हैं वह वरुण हमलोगों को संसारबन्धन से छुड़ावें ॥

ॐ वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते ॥८॥

टी०—धृतव्रतः प्रजा की रक्षा करने में जो धृतव्रत हैं अर्थात् प्रजाओं की रक्षा करनाही जिसका दृढ़ नियम है ऐसे वरुणदेव प्रजावतः प्रजायुक्त अथवा उत्पन्न होनेवाले द्वादशमासः बारहों महीनों को वेद जानतेहैं और यः जो तेरहवां महीना अधिकमास तीसरे वर्ष के समीप स्वयं उपजायते उत्पन्न होताहै उसे भी वेद जानतेहैं, ऐसे वरुणदेव को मेरा नमस्कार है ॥

ॐ वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ॥९॥

टि०—जो वरुणदेव अथवा सूर्यदेव उरोः विशाल ऋष्वस्य देखनेयोग्य बृहतः अधिक गुणों से सम्पन्न वातस्य वायु की वर्तनिम् पद्धति अर्थात् मार्ग को वेद जानतेहैं औ ये जो देवगण अध्यासते ऊपर आकाशमार्ग में स्थित हैं उनको भी वेद जानतेहैं सो वरुणदेव मेरी रक्षा करें ॥

ॐ निषंसाद धृतव्रतो वरुणः पुस्त्याः स्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥

टी०—धृतव्रतः प्रजापालन के नियम में दृढ़ औ सुक्रतुःसुकर्मा वरुणः वरुणदेव पस्त्यासु गृह-कार्य्य की सिद्धिकरनेवाली देवियों में साम्राज्याय प्रजाओं की साम्राज्य सिद्धि के निमित्त आनिषसाद आकर बैठें. तात्पर्य यह कि मनुष्यों के घर के कार्य्यों की पूर्ण करनेवाली जो बुद्धि, विद्या, लक्ष्मी, इत्यादि भिन्न २ शक्तियां हैं उनके मध्य में यदि वरुणदेव आप अपने महत्त्व के साथ आकर विराजमान हों तो मनुष्य को अवश्यही साम्राज्य की प्राप्ति होवे । ऐसे वरुणदेव को मेरा नमस्कार है ॥

ॐ मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥

ऋ० अष्ट० ५ अ० ६ व० ११

टी०—राजन्वरुण ! हे देवराज वरुण ! अहम् मैं ने मृन्मयम् गृहम् मृत्तिका से निर्मित आप के घर को उ निश्चय करके मागमम् नहीं पायाहै किन्तु सु

सुन्दर अर्थात् सुवर्णमय आप को प्राप्त कियाहै इस कारण आप मुझे मृळ सुखी करें और सुक्षत्र हे शोभन धन अर्थात् उत्तमधनवाले वरुण आप मृळय मुझपर दयाकरें ॥ तात्पर्य यह कि आप का घर मट्टी का नहीं है किन्तु काञ्चन का है अर्थात् आप दरिद्र नहीं हैं किन्तु बड़े ऐश्वर्यवाले हैं इसकारण आप मुझे सुखी करनेमें समर्थ हैं सो आप मुझे दयाकर अवश्य सुखी करें ॥

ॐ यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातोऽद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥

ऋ० सं० अष्ट० ५ अ० ६ व० ११

टी०—अद्रिवः हे आयुधवान अर्थात् शस्त्रधारण करनेवाले वरुणदेव यत् जिसकाल में आप के भय से प्रस्फुरन् इव शीतलता से स्तब्ध अर्थात् ठंढ से कांपतेहुए के समान और दृतिःन चर्मपुट अर्थात् भाथी के समान ध्मातः वायु से फूलकर श्वासोच्छ्वास लेताहुआ पृथिवी में चलताहूं उस समय आप मुझे मृळ सुखीकरें । औ सुक्षत्रमृळय का अर्थ पूर्व मंत्र के अर्थ के अनुसारही है ॥

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमाशुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥

ऋ० सं० अ० ५ अ० ६ वर्ग ११

टी०—समह हे ऐश्वर्ययुक्त औ शुचे स्वभाव से स्वच्छ वरुणदेव ! दीनता निर्धन औ अत्यन्त दीन होने के कारण शक्तिहीन होकर क्रत्वः जो श्रौत स्मार्त, यागादि कर्मों के प्रतीपम् प्रतिकूलता को जगम मैं ने प्राप्त कियाहै अर्थात् शास्त्रविहित कर्मों को मैं नहीं करसका इसकारण दोष का भागी होकर जो मैं आप से दण्डनीय हूं सो आप मेरे अपराधोंको क्षमाकर मृळ मुझे सुखी करें । सुक्षत्रमृळय पूर्व अर्थानुसार ॥

ॐ अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ४

ऋ० सं० अ० ५ अ० ६ व० ११

टीका—जरितारम् आप की स्तुतिकरनेवाले मुझको अपांमध्ये समुद्रों के जल में तस्थिवांसम्

नउका इत्यादि पर स्थितरहते तृष्णा अविदत् पिपासा लगतीहै, अर्थात समुद्र का जल अत्यन्त क्षार होने के कारण पीने के अयोग्य होने से समुद्र में रहते भी पिपासा बाधा करती है ऐसे समय में हे वरुणदेव ! आप मुझे मृळय सुखी करें अर्थात् ऐसे समय में भी मैं आप की कृपा से मधुरजल को प्राप्त कर सुखी होऊं। और सुक्षत्रमृळय पूर्व अर्थानुसार ॥

कृष्णयजुर्वेदहिरण्यकेशीयसन्ध्यावालों को अपने उपस्थान के उन मन्त्रों के साथ जिनका अर्थ पूर्व में हो आयाहै निचले दोनों मन्त्रों को अधिक पढ़नाहोगा इसकारण इन दोनों का अर्थ यहां करदियाजाताहै।

ॐ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांᳫंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ तै. सं. का. २ प्र. ५ अ. १२

टी०—अग्ने हे अग्निदेव ! त्वं आप हमलोगों से वरुणस्य देवस्य वरुणदेव के विद्वान्हेडः उस

विदित क्रोध को जो हमलोगों पर सन्ध्या नहीं करने के कारण होताहै अवयासिसीष्ठा दूरकरें अर्थात् भगवान वरुणदेव के कोप से मुझको बचावें क्योंकि आप यजिष्ठः यज्ञ के पूर्णकरनेवालेहैं और वह्निमः यज्ञों के हविष्यों को ग्रहण करनेवालेहैं औ शोशुचानः अत्यन्त दीप्यमानहैं इसलिये आप विश्वाद्वेषांसि समस्त द्वेषों को स्मत हमलोगों से प्रमुमुग्धि निकाल डालें ॥

ॐ स त्वं नो॑ अग्नेऽवमो भ॑वोती ने॑दिष्ठो अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ । अव॑ यक्ष्व नो॒ वरु॑णꣳ॒ ररा॑णो वी॒हि मृ॑डी॒कꣳ सु॒हवो॑ न एधि ॥ तै. सं. का. २ प्र. २ अ. १२

टी०—अग्ने हे अग्निदेव ! स त्वं वह जो आप उपरोक्त गुणों से सम्पन्न हैं सो आप नः हमलोगों की ऊती रक्षाकरने के कारण हमारे अवमः रक्षक कहलावें, आप कैसे हैं कि अस्याउषसः आज इस उषा की व्युष्टौ उजियारी के प्रकट होने के समय अर्थात् प्रातःकाल नेदिष्ठः उषा के समीप समीप बैठनेवाले

हैं अर्थात् उषा के साथ शीघ्रही अपनी अरुणाई के दिखानेवाले हैं सो आप नः हमलोगों के उस दोष को जो वरुणं वरुणदेव के अपमान के कारण हुआहै अवयक्ष्व नाश करें और रराणो अत्यन्त रमणीय मृडीकं सुखसाधनकरनेवाले हमलोगों के सुहवः सुन्दर आह्वान को एधि सुने वा सुनने को समर्थ होवें ॥

(अथर्ववेदीय उपस्थान मंत्रों के अर्थ नीचे लिखेजातेहैं, किनमंत्रों से किस समय उपस्थान-करना वह बृहत्सन्ध्या में देखलेना)

ॐ अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चाद-भयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नोऽस्तु॥१॥

टी०—अन्तरिक्षं अन्तरिक्षलोक जो स्वर्गलोक औ मर्त्यलोक के मध्य का लोक वह नः हमलोगों को अभयंकरोति भयरहित करे औ इमेउभे ये जो दोनों सकलप्राणियों के निवासस्थान द्युलोक औ पृथिवी-लोक हैं वे भी हमलोगों को निर्भय करें तथा पश्चात् पीछे, पुरस्तात् आगे, उत्तरात् ऊपर अधरात् नीचे

अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, चारों ओर नः हमलोगों को अभयं अस्तु अभय प्राप्त रहै ॥

ॐ अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशाममममित्रं भवन्तु २

टी०—अभयंमित्रात् मित्रों से हमलोगों को अभय प्राप्त रहै, यदि शंका हो कि मित्र तो वे कहलातेहैं जो सदा सर्वदा हितकरें फिर उन से भय क्या जो यहां उनसे भी अभय प्राप्ति रहने की प्रार्थना की तो उत्तर यह है कि मित्रों से जो हितहोवे उसमें किसी प्रकार की दैवी वा आसुरी बाधा न हो किन्तु उनका हितकरना सदा सफलही होवे, फिर अभयममित्रात् अमित्र अर्थात् शत्रुओं से अभय हो अभयंज्ञातात् जो विदित शत्रुहैं उनसे औ यःपुरःजो गुप्तशत्रु हैं अर्थात् ऊपर से तो मीठी २ बातें करतेहैं किन्तु भीतर से गूढ़शत्रु हैं उनसे अभय हो, अभयंनक्तं रात्रि में सदा अभय हो अभयं दिवा दिन में सदा अभयहो अर्थात् दिनरात में जो कभी भय का समय आजावे तो उस से

भी कल्याण हो, फिर सर्वाआशा सर्वदिशायें मम मित्रं भवन्तु मेरे मित्रहों अथवा सर्वदिशाओं में मेरे मित्र ही मित्रहोवें ॥

ॐ उद्धेदभिश्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

टी०—सूर्य हे सूर्यदेव ! आप अभि इन्द्रदेव के अभिमुख अर्थात सामने उत् एषि=उदेषि उदय-लेतेहैं वह इन्द्रदेव कैसेहैं कि श्रुतामघम् विख्यात श्रोत्रियों औ यज्ञकरनेवालों को देनेकेलिये जिनका धन 'मघ' नाम करके विख्यात है अर्थात यज्ञकरनेवालों को जो वहुत धन के देनेवालेहैं औ वृषभम् अनेक और प्रकार के धन के भी देनेवालेहैं तथा नर्यापसं नरों के कल्याण के निमित्त ही 'अपस' कर्म है जिस का अर्थात् सेवकों की अभिलषित मनोकामना के सिद्ध करनेवाले औ अनिष्ट के निवारण करनेवालेहैं, अ-स्तारम् शत्रुओं के नाशकरनेवालेहैं ॥

ॐ नवयो नवतिं पुरो विभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहा वधीत् ॥ २

(पूर्वोक्त मंत्र से इस मंत्र को सम्बन्ध है अर्थात् इन्द्रदेव का महत्त्व इस मंत्र में भी वर्णन कियागयाहै)

टी०—वह इन्द्रदेव कैसे है यः जिसने सम्बरासुर के नवनवतिंपुरः निनानवे पुरियों को जो माया कर के बनीहुई थीं बाहोजसा अपने बाहुबल से विभेद् नाशकिया। प्रमाण-ऋग्वेद अष्ट० २ अध्या० १९ व० ६:-"दिवोदासाय नवतिंच नवेन्द्रः पुरोव्यैरच्छम्बरस्य" फिर वृत्रहा साधारण शत्रुओं को नाशकरनेवाले अथवा वृत्रासुर के हनन करनेवाले हैं, फिर कैसे हैं कि जिनों ने अहिंच* अहि जो वृत्रासुर उसको अवधीत् वधकिया ॥

ॐ स नु इन्द्रः शिवः । सखाश्वावत् गोमद्यवमत्उरुधारेवदोहते ॥ २ ॥

टी०—सः पूर्वमन्त्रोक्त गुणों से युक्त जो इन्द्रदेव हैं वह कैसेहैं कि नः हमलोगों को शिवःसखा सुख-देनेवाले मित्रों से युक्त अश्वावत् अश्वों से युक्त गोमत्, गउओं से युक्त यवमत् यव अर्थात् अन्नों

---

* निरुक्त का अर्थ है कि- आगत्य हान्तहि अहिः इत्रः।

से युक्त धन को हरुधारेव बहुतधारावाली गउओं के समान दोहते* देतेहैं । अर्थात् जिसप्रकार बहुत दुग्ध देनेवाली गइया बहुतों को तृप्त करनेकेलिये बहुत दूध देतीहै इसीप्रकार इन्द्रदेव बहुत अश्व, गऊ, अन्न, इत्यादि से युक्त धन देवें ॥

अथर्ववेद वालों को एक क्रिया 'कर्मारम्भ' अधिक करनी पड़तीहै इसकारण कर्मारंभ मंत्र का अर्थ अब इस स्थान में करदियाजाताहै ॥

ओं अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया । ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथकर्माणि कृण्महे ॥

---

* छान्दस होने से 'शप' का लुक नहीं हुआ इसकारण दुग्धे न होकर दोहते हुआ, अथवा लेट लकार के परे 'अट' का आगम होने से दोहते हुआ ।

टी०—व्यचसः समस्त शरीर व्यापक जो व्यान-
वायु तिसकी समष्टि और * अव्यसः व्यष्टिरूप
जो प्राणवायु तिन दोनों का जो बिल सन्धिस्थान
मूलाधार उसे मायया क्रियारूप विष्याति + तोड़-
डालताहूं वा प्रकाश करताहूं अर्थात् ताभ्यामुद्धृत्य
इन दोनों वायुओं से तोड़करके वेदरूप अक्षरात्मक मन्त्रों
को मूलाधार रूप बिल से परा, पश्यन्ति, मध्यमा, औ
वैखरी, इन वाणीरूपों के शब्दों के द्वारा उद्गम् ऊपर
की ओर निकालकर अर्थात् मुख से उच्चारण कर अथ
तदनन्तर कर्माणि श्रौत औ स्मार्त कर्मों को कृणोति
हमलोग करतेहैं अर्थात् वेदों का मंत्र विधिपूर्वक स्वर-
सहित उच्चारण कर कर्मों को आरम्भकरतेहैं ॥

अथवा अव्यचसः अल्पपरिच्छिन्न जो जीवात्मा
और व्यचसः अपरिच्छिन्न जो परमात्मा इनदोनों
के बिलं मिलने का स्थान जो हृदयकमल उसे मायया

---

* छान्दस प्रयोग के कारण च लोपहोजाने से 'अव्यचस' 'अव्यस' होगया ॥

+ उपसर्ग युक्त 'षो' धातु विमोचन अर्थ में आताहै इस-
लिये विष्याति का अर्थ 'स्यतिरुपसृष्टो विमोचने' इस नि-
रुक्त के प्रमाण से 'तोड़डालताहूं' हुआ

अज्ञानता से विष्यामि रहितकरताहूं अर्थात् हृदय को अज्ञानरहित कर शुद्ध करताहूं क्योंकि अज्ञान मिश्रित रहने से हृदय कर्म अकर्म का विवेक नहीं करता, फिर ताभ्याम् तिन दोनों जीवात्मा औ परमात्मा से वेदं कर्मविषयक ज्ञान को उद्दश्य सम्पादन कर अथ तदनन्तर कर्माणि नित्य, नैमित्तिक कर्मों को हमलोग आरंभकरतेहैं । अर्थात करनेयोग्य कर्म के स्वरूपों को, उनके साधनसमूहों औ अङ्गों को, उनके फलों को, औ उन कर्मों के प्रतिपादक जो 'मंत्र' औ 'ब्राह्मण' इन दोनों के अर्थों को जानकर कर्म प्रारंभकरताहूं ।

अथ

सूर्यप्रदक्षिणामन्त्रार्थः

शुक्लयजुर्वेदमाध्यन्दिनशाखीय सूर्यप्रदक्षिण मन्त्र का अर्थ नीचे कियाजाताहै ॥

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यान्धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवएकः ॥

टी०—विश्वतश्चक्षुः सबओर नेत्र रखनेवाला उत और विश्वतोमुखः सबओर मुखरखनेवाला और विश्वतोबाहुः सबओर भुजारखनेवाला उत और विश्वतस्पात् सबओर चरण रखनेवाला एकः एक ही अद्वितीय देवः असंख्य ब्रह्माण्डों के साथ क्रीड़ाकरनेवाला महानारायण द्यावाभूमी स्वर्ग औ पृथिवी को जनयन् उत्पन्न करताहुआ बाहुभ्याम् अग्नि औ सूर्य रूप अथवा जीव औ ईश्वर रूप अपनी

दोनों भुजाओं से सन्धमति समस्त ब्रह्माण्ड को प्रज्व-
लित वा प्रकाश करताहै, तथा पतङ्गः दिवा औ रात्रि
रूप अपने दोनों पक्षों मे सब भिन्न स्थानों पर अथवा
व्यष्टि देहों पर प्रकाश औ अन्धकार का विभाग समान
सत्ता के साथ करताहै, ऐसे महानारायण की अथवा
सूर्यदेव की मैं परिक्रमा करताहूं ॥

शु० य० काण्वशाखीय प्रदक्षिणमंत्र का अर्थ०—

सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्ते ।

शु० य० अध्याय० ५ मं० २१

टी०—सूर्यस्य सूर्य के आवृतम् वारंवार उदय
औ अस्त के अनु अनुसारही आवर्त्ते मैं भी समाधि
औ उत्थान कर्म को करताहूं अर्थात् जैसे सूर्य उदय
होकर अस्त होजातेहैं फिर दूसरे दिन नियत समय
पर उदयहोतेहैं उसीप्रकार मैं भी अपने कर्म में प्रवेश-
कर नियत समय पर कर्म का आरंभ औ समाप्ति
करताहूं ॥ अथवा जिस प्रकार सूर्यदेव सम्पूर्ण विराट्
की परिक्रमा करते हैं तदनुसार मैं भी सूर्यदेव की
परिक्रमा करताहूं ॥

अथ

गायत्र्यावाहन मन्त्रार्थः

(सर्व वेद औ शाखा वालों के आवाहनमन्त्र का अर्थ इसस्थान में लिखाजाताहै, किसमन्त्र से किसको आवाहन करनाचाहिये सो सन्ध्या में देखलेवें) ॥

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टन्देवयजनमसि ॥ शु० य० अ० १ मन्त्र ३१

टी०—हे देवि गायत्रि ! तुम तेज शरीर की कान्ति करानेवाली असि हो, अथवा तुम स्वयं प्रकाशरूप ही हो, शुक्र वीर्य रूप असि हो अर्थात् वीर्य हो कर लोक लोकान्तर में अन्नादि की करानेवाली असि हो, अमृतम् देवताओं की तृप्तकरनेवाली हो इसकारण अमृतरूप असि हो, धाम असि देवताओं की चित्तवृत्ति के धारणकरने का स्थान हो अथवा प्राणिमात्र की उत्पत्ति, स्थिति औ लय का स्थान तुमही हो, नाम असि सर्वप्राणियों को अपनी ओर झुकानेवाली हो

अर्थात् सर्वप्राणी तुम्हारी माया से मोहित होरहे हैं देवानांप्रियं सब देवताओं की प्रिय अग्नि हो, और अनाधृष्टम् तिरस्काररहित होकर अर्थात सदा आदरणीय होकर देवयजनम् देवताओं के यजन करने के योग्य अग्नि हो अथवा तुम्हारी कृपा से यज्ञों में देव पूज्यहोकर अपने २ भाग को पातेहैं, इसलिये तुम मेरे समीप आओ ॥

इस मन्त्र के साथ नीचे लिखे श्लोकों से भी प्रातः मध्याह्न और सायं आवाहन करनाचाहिये इसलिये इन श्लोकों का भी अर्थ यहां करदियाजाताहै (किस समय किन श्लोकों से करनाचाहिये बृहत्सन्ध्या में देखो) ।

ॐ गायत्रीं त्र्यक्षरां बालां साक्षसूत्रकमण्डलुम् । रक्तवस्त्रां चतुर्हस्तां हंसवाहनसंस्थिताम् । ऋग्वेदस्य कृतोत्संगां सर्वदेवनमस्कृताम् । ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम् । आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् । आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि । गायत्रि छन्दसां मातर्ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते ॥

टी०—सूर्यमण्डलात् आयान्तीं आवाहन द्वारा

सूर्यमण्डल से आतीहुई गायत्रीं देवीं गायत्री देवी को आवाहयाम्यहम् मैं आवाहन करताहूं, वह देवी किनगुणों से सम्पन्न है उसे कहते हैं त्र्यक्षरां – जो अ, उ, म तीन अक्षर वाली अर्थात् प्रणवस्वरूपा है, फिर बालां बाल अवस्था से युक्त, साक्षसूत्रकमण्डलुम् जपमाला औ कमण्डलु को धारण कियेहुए, रक्तवस्त्रां अरुणवर्ण वस्त्र पहिने चतुर्हस्तां चतुर्भुजा हंसवाहनसंस्थितां हंस के ऊपर आरूढ़ ऋग्वेदस्य कृतोत्सङ्गां ऋग्वेद को गोद में लियेहुए सर्वदेवनमस्कृतां सब देवों से वन्दनीय वा पूज्य ब्रह्माणीं ब्रह्मा की शक्ति ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मही है देव जिसका अर्थात ब्रह्मही है इष्टदेव जिसका, ब्रह्मलोकनिवासिनीम् औ जो ब्रह्मलोक में निवास करनेवाली है –सो हे वरदे वरदायिनि देवि गायत्रि गायत्रि देवि त्र्यक्षरे अ, उ, म, तीनों अक्षरवाली अथार्त् प्रणव स्वरूपा ब्रह्मवादिनि वेद अथवा ब्रह्मा वा ब्रह्म की निश्चय करनेवाली छन्दसांमातः वेदों की माता ब्रह्मयोनि ब्रह्मानन्द स्थान, आगच्छ मेरे समीप आओ मैं नमोस्तुते आप को नमस्कार करताहूं ॥

ॐ सावित्रीं युवतीं श्वेताङ्गीं श्वेतवाससां त्रिनेत्रां

वरदाक्षमालां त्रिशूलाऽभयहस्तां वृषभारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदैवत्यां तपोगुणयुतां भुवर्लोकव्यवस्थितां आदित्यपथगामिनीम् । आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् । आगच्छवरदे देवि त्र्यक्षरे रुद्रवादिनि । वरदां त्र्यक्षरां साक्षाद्देवीमावाहयाम्यहम् । सावित्रि छन्दसांमाता रुद्रयोनि नमोऽस्तु ते ॥

टी०—सूर्यमण्डलात्आयान्तीं सूर्यमण्डल से आवाहन द्वारा आतीहुई सावित्रीं देवीं सविता अर्थात् रुद्रदेव की शक्ति जो सावित्री देवी है उसे आवाहयाम्यहम् मैं आवाहन करताहूं, वह किन गुणों से सम्पन्नहै उसे कहतेहैं—युवतीं युवा अवस्था से युक्त श्वेताङ्गीं गौरअंगवाली श्वेतवाससां शुक्लवस्त्रधारणाकिये त्रिनेत्रां तीन नेत्रवाली वरदाक्षमालां वरदेनेवाली अक्षमाला पहिने त्रिशूलाऽभयहस्तां सर्वप्रकार के भय के नाशकरनेवाले अथवा शत्रुओं से निर्भय रहनेवाले करकमल में त्रिशूल धारणकिये, अथवा हस्त में त्रिशूल धारणकिये, अथवा हस्त में त्रिशूल औ अभय जो मोक्ष उसे धारण कियेहुए वृषभारूढ़ां नन्दी नाम बैल पर सवार यजुर्वेदसंहितां यजुर्वेद संग में लिये रुद्रदैवत्यां

रुद्र ही हैं देव अर्थात् इष्टदेव जिसके तमोगुणयुतां तमोगुण धारणकर प्रलयकाल में सम्पूर्ण विश्व को संहारकरनेवाली भुवर्लोक व्यवस्थितां विशेषकर भुवर्लोक में निवासकरनेवाली आदित्यपथगामिनीं सूर्यदेव के मार्ग होकर चलनेवाली अथवा आदित्य नाम रुद्र के संग चलनेवालीहै । सो हे वरदे वर की देनेवाली त्र्यक्षरे तीन अक्षर अ, उ, म, अर्थात् प्रणव स्वरूपा रुद्रवादिनि रुद्रदेव को निश्चयकरानेवाली देवि सावित्रि देवि आगच्छ आओ । ऐसी त्र्यक्षरां तीनअक्षरवाली प्रणवरूपा वरदां वरकी देनेवाली साक्षाद्देवीं साक्षात् देवी को आवाहयाम्यहम् मैं आवाहनकरताहूं, सो हे सावित्रि सावित्रि देवि तुम जो छन्दसांमातः वेदों की माताहो औ रुद्रयोनि * भक्तों के कल्याण निमित्त रुद्रदेव के प्रकट होने का स्थानहो इसकारण नमोस्तुते आप को मेरा नमस्कारहै ॥

---

* गायत्री के जप करनेही से ब्रह्मा विष्णु रुद्र, तीनों देव प्रगट हो भक्तों को दर्शन देतेहैं इसकारण, ब्रह्म योनि, रुद्रयोनि, औ विष्णुयोनि इन तीनों नाम से गायत्री को ऋषियों ने पुकारा है ॥

ॐ वृद्धां सरस्वतीं कृष्णां पीतवस्त्रां * चतुर्भुजाम्। शङ्खचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहिनीम्। सामवेदकृतोत्सङ्गां सर्वलक्षणसंयुताम्। वैष्णवीं विष्णुदैवत्यां विष्णुलोकनिवासिनीम्। आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं विष्णुमण्डलात्। आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे विष्णुवादिनि। सरस्वति छन्दसां मातर्विष्णुयोनि नमोऽस्तु ते ॥

टी०—विष्णुमण्डलात् आयान्तीं विष्णुमण्डल से आतीहुई सरस्वतीं देवीं सरस्वती देवी को आवाहयाम्यहं मैं आवाहन करताहूं, वह देवी कैसीहै कि वृद्धां वृद्ध अवस्था से युक्त कृष्णां कृष्णाङ्गी पीतवस्त्रां पीताम्बर धारणकिये चतुर्भुजाम् चार भुजावाली शङ्खचक्रगदापद्महस्तां चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा औ पद्म धारण कियेहुए गरुड़वाहिनीम् गरुड़ के ऊपर सवार सामवेदकृतोत्संगां सामवेद को गोद में लिये सर्वलक्षणसंयुतां सर्वप्रकार के शुभलक्षणों से युक्त वैष्णवीं विष्णु की शक्ति विष्णुदैवत्यां विष्णु ही हैं इष्टदेव जिसके विष्णुलोक निवासिनीम् सदा विष्णुलोक में रहनेवाली है ॥ शेष पूर्व अर्थानुसार जानना ॥

ॐ ओजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामाऽसि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुरभिभूरों गायत्रीमावाहयामि सावित्रीमावाहयामि सरस्वतीमावाहयामि छन्दर्षीनावाहयामि श्रियमावाहयामि ॥

तै० आ० प्र० १० अ० ३५

टी०—ओजोऽसि हे गायत्रि देवि ! संपूर्ण शरीर की शक्ति तूही है। सहोऽसि शत्रुओं को पराजय करनेवाली शक्ति तूही है। फिर बलमसि शरीर का सामर्थ्य भी तूही है। भ्राजोऽसि शोभा अर्थात् शरीर की कान्ति भी तूही है। देवानां धामनामाऽसि अग्नि, इन्द्र, वरुण, कुबेर इत्यादि देवों का धाम अर्थात् निवासस्थान और नाम अर्थात् प्रसिद्धकरानेवाली शक्ति भी तूही है, अथवा सब देवों का नाम अर्थात् झुकने का स्थान भी तूही है। विश्वमसि सर्व जगत चराचर रूप तूही है। विश्वायुः स्थावर जङ्गम प्राणि

मात्र की आयु भी तूही है अर्थात् इस जगत में अपने २ नियत समय तक वृक्षादि के ठहरने का कारण भी तूही है। सर्वमसि जोकुछ रचना सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में देखपड़तीहै सो सब तूही है। सर्वायुरसि सब के प्राण की धारण करनेवाली है अभिभूः सर्वप्रकार के पापों के तिरस्कार का कारण तूही है। ॐ प्रणव से. प्रतिपाद्य परमाशक्ति तूही है। ऐसी गायत्री माता को गायत्री-मावाहयामि प्रातःकाल गायत्री रूप से औ सावित्री मावाहयामि मध्यान्हकाल सावत्री रूप से औ सरस्व-तीमावाहयामि सायंकाल सरस्वती रूप से मैं आवाहन करताहूं। —प्रमाण०—पराशरमाधवीये— ॥

* गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने सरस्वती च सायाह्ने सैव सन्ध्या त्रिधामता गायत्री प्रोच्यते तस्माद्गायन्तं त्रायते यतः सवितृर्द्योतनात्सैव सावित्री परिकीर्तिता जगतः प्रसवित्री वा वाग्रूपत्वात्सरस्वती

* प्रातःकाल, गायत्री, मध्यान्ह में सावित्री, सायंकाल सरस्वती नाम से उसी गायत्री को पुकारते हैं। गानेवालों की जो रक्षा करे वह गायत्री, विशेप रूप से प्रकाश करे वह सावित्री। संसार को उत्पन्न करने औ वचन रूपा होनेसे सरस्वती ॥

फिर छन्दर्षिनावाहयामि वेदमंत्रों के अर्थात् गायत्री इत्यादि के ऋषि विश्वामित्र आदि को मैं आवाहन करताहूं श्रियमावाहयामि लक्ष्मीरूपा वेद माता परमशक्ति को आवाहन करताहूं ॥

अथ

गायत्र्युपस्थान मंत्रार्थः

ॐ गायत्र्यस्येकपदी। द्विपदीत्रि-पदी चतुष्पद्यपद्यसि। नहिपद्यसे नम-स्ते तुरीयायदर्शताय पदाय परोरजसे सावदोम्।

टी०—गायत्रि हे गायत्रि देवि तू एकपदीअसि एकपाद वाली है अर्थात् प्रथमपाद जो तत्सवितुर्वरेण्यम् उसको जाग्रत अवस्था से सम्बन्ध है इस कारण हे देवि तूअपने प्रथम पाद के प्रभाव से सम्पूर्ण जाग्रत अवस्था की रचना करनेवाली है, फिर द्विपदी दो पाद वाली है अर्थात् प्रथम पाद जिसका वर्णन ऊपर

होचुका है उसके साथ द्वितीय पाद जो भर्गोदेवस्य धीमहि जिसको स्वप्नावस्था से सम्बन्ध है जिसके प्रभाव से तू स्वप्नावस्था की सारी रचना करडालती है, इसीप्रकार त्रिपदी तू तीनपाद वाली है अर्थात उक्त प्रकार ही जाग्रत, स्वप्न, के पश्चात्, धियोयोनः प्रचोदयात् इस तीसरेपाद के प्रभाव से सुषुप्ति की रचनेवाली है, फिर चतुष्पदी चारपादवाली है अर्थात् उक्त प्रकार ही तीनों अवस्थाओं की रचना करतीहुई परोरजसेसावदोम् इस चतुर्थ पाद के प्रभाव से तुरीय जो चौथी अवस्था उसमें अवस्थान करजाती है। अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि तुझही से उत्पन्न हो फिर तेरेही में प्रवेश करजाती है। फिर तू अपदीअसि पादरहित है अर्थात उपरोक्त अवस्थाओं से भी विलक्षण है, तात्पर्य्य यह कि तू अनिर्वचनीयाहै इसकारण नाहिपद्यसे तेरी महिमा किसी को प्राप्त होनेवाली नहीं है सो हे देवि नमस्ते तुझको मेरा नमस्कार है तेरे किन स्वरूपों के निमित्त नमस्कार है उसे कहतेहैं कि तुरीयाय परमानन्द अवस्था के निमित्त, दर्शताय ज्योतिःस्वरूप के निमित्त पदाय परमपद अर्थात् मोक्षस्वरूप के निमित्त, परोरजसे परमतेज अथवा परम सूक्ष्म स्वरूप के निमित्त। सा सो उस देवी ने आवत् सम्पूर्ण

चराचर की रक्षा की अथवा आदिसृष्टि में सम्पूर्ण विश्व की रचना कर मध्य में पालन कररहीहै. सो मेरी भी रक्षा करे ॥ ॐ का अर्थ पूर्व में होचुकाहै ॥

सामवेदवालों को गायत्र्युपस्थान के साथ 'आत्मरक्षा' औ 'रुद्रोपस्थान' दो क्रियायें अधिक करनी पड़तीहैं इसकारण इनका अर्थ यहां करादियाजाताहै ॥

आत्मरक्षामं०—

ॐ जातवेदसे सुनवाम ' इस मन्त्र का अर्थ पृष्ठ २०० में पाठकगण देखलेंगे)

रुद्रोपस्थान मं०—

ॐ ऋतंसत्यं परंब्रह्मपुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ऊर्ध्वलिङ्गं विश्वरूपं नमोनमः ।

टी०—ऋतं परमपवित्र न्यायकारी सर्व विद्या का जाननेवाला सत्यं अविनाशी तीनों काल में एकरस वर्तमान परंब्रह्मपुरुषं प्रधान, सर्वव्यापी औ अनादिपुरुष कृष्णपिङ्गलं कृष्णवर्ण औ पिङ्गल जो पीतवर्ण दोनों वर्णों से मिश्रित अर्थात् धूम्रवर्ण ऊर्ध्वलिङ्गं अ-

त्यन्त उच्च औ विशाल ज्योतिर्लिङ्गाकार विश्वरूपं जो विराटमूर्ति विरूपाक्ष उसे नमोनमः नमस्कार है ॥

छायाचक्र * के साधनकरनेवाले अर्थात् स्वप्रतीकोपासनावाले इसी मन्त्र से इस योगक्रिया को साधन करतेहैं, उसकी रीति यह है कि गाढ़आतप अर्थात् ढेढ़पहर दिनचढ़े किसी बड़े मैदान (क्षेत्र) में जाकर सूर्य की ओर पीठकर अपने सन्मुख अपने शरीर की छाया में गर्दन की दोनों ओर की रेखाओं पर थोड़ीदेरतक दृष्टि जमा देखे ऐसा कि पलकें गिरने न पावें एवम्प्रकार देखते २ थोड़ीदेर के पश्चात् उनहीं न गिरती हुई पलकों को आकाश की ओर उठादेखे तो देखते के साथ एक धूम्रवर्ण अत्यन्त विशालरूप विराट्मूर्ति पृथिवी से आकाश तक फैलीहुई देखपड़ेगी, इसी को विराट्मूर्त्ति अथवा छायाचक्र कहतेहैं जो थोड़ेदिनों के साधन के पश्चात् प्रकट हो दर्शन देताहै (गुरुद्वारा इस क्रिया को जानलेना) जो प्राणी उक्त (ऋतं सत्यं) मन्त्र से नित्य इसका साधनकरे तो उसको कालज्ञान प्राप्तहोजावे ॥

---

* गाढ़ातपे स्वप्रतिबिम्बितेश्वरं निरीक्ष्य विस्फारित लोचनद्वयम् । यदा नभः पश्यति स्वप्रतीकं नभोंगणे तत्क्षणमेव पश्यति ॥ शिवसंहितायांपञ्चमपटले ॥ श्लोक ३१

अथ

गायत्रीध्यान मन्त्रार्थः

ॐ—मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखै-स्त्रीक्षणै । र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वा-त्मवर्णात्मिकाम् ॥ गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशां शुभ्रं कपालं गुणं । शंखं चक्रमथारविन्द युगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

टी—मुक्तेति जिसके तीननेत्रवाले मुख मोती मूंगा, सोना, नीलमणि इत्यादि के प्रकाश से प्रकाशित होरहे हैं, और इन्द्विति जिसके मस्तक पर चन्द्रिका जड़ित रत्न का मुकुट शोभमान होरहा है औ तत्त्वा-त्मेति तत्त्वात्मक वर्ण जो ॐकार सो ॐकार ही है स्वरूप जिसका, औ जो वर, अभय (मोक्ष), अंकुश, कश (कोड़ा), स्वच्छ कपाल, गुण (पाश), शङ्ख, चक्र, एक जोड़ा कमल हाथों में धारणकिये सुशोभित होरहीहै ऐसी गायत्री गायत्री को भजें मैं ध्यान करताहूं ॥

ॐ—बालां बालादित्यमण्डल मध्यस्थां रक्त-वर्णां रक्ताम्बरानुलेपन स्रगाभरणां चतुर्वक्त्राष्ट-

नेत्रां दण्डकमण्डलवक्षसूत्राभयाङ्कचतुर्भुजां हंसासनारूढां ब्रह्मदैवत्यामृग्वेदमुदाहरन्तीं भूर्लोकाधिष्ठात्रीं गायत्रीं नामदेवतां ध्यायामि । आगच्छ वरदेदेवि जपे मेसन्निधौ भव । गायन्तं त्रायसे यस्माद्गायत्री त्वं ततः स्मृता ॥
(ऋग्वेदवाले इस मन्त्रसे आवाहन ध्यान दोनों करसकतेहैं)

टी०—बालां बालस्वरूपा अर्थात् कुमारी बालादित्येति बालसूर्य अर्थात् प्रातःकालीन सूर्य के मध्य स्थितरहनेवाली रक्तवर्णां रक्तवर्ण शरीर रक्ताम्बरेति रक्तही वर्ण के वस्त्र, चन्दन, माला औ आभूषणों को धारण कियेहुए चतुर्वक्त्रेति चार मस्तक औ आठनेत्रवाली दण्डेति दण्ड, कमण्डल, माला औ अभय को चारों भुजाओं में लिये हंसेति हंस के ऊपर सवार ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मा ही है देव जिसका ऋग्वेदेति ऋग्वेद को प्रकाश करतीहुई भूर्लोकाधिष्ठात्रीं भूलोकाभिमानिनी देवता गायत्रींदेवीं ऐसी गायत्री देवी को मैं ध्यानकरताहूं ।

ॐ युवतिं युवादित्यमण्डलमध्यस्थां श्वेतवर्णां श्वेताम्बरानुलेपनस्रगाभरणां पञ्चवक्त्रां प्रतिवक्त्रत्रिनेत्रां चन्द्रशेखरां त्रिशूलखड्गखट्वाङ्गडम-

रुद्राक्षचतुर्भुजां वृषभासनारूढ़ां रुद्रदैवत्यां यजुर्वेदमुदाहरन्तीं भुवर्लोकाधिष्ठात्रीं सावित्रींनाम देवतां ध्यायामि ॥

(इस मन्त्र से आवाहन ध्यान दोनों करसक्तेहैं)

टी०—युवतीं युवा अवस्था से युक्त युवादित्येति युवा आदित्य अर्थात् मध्याह्नकालीन सूर्यमण्डल में निवास करनेवाली श्वेतवर्णां गौरअङ्गवाली श्वेताम्बरेति श्वेतही वर्ण वस्त्र, चन्दन, माला औ आभूषणों को धारणकियेहुए पञ्चवक्त्रेति पांच मस्तक औ प्रतिमस्तक में तीन २ नेत्र धारणकिये चन्द्रशेखरां चन्द्रमा सुशोभित होरहाहै मस्तक में जिसके, त्रिशूलेति त्रिशूल, खड्ग, खट्वाङ्ग* औ डमरू चारों भुजाओं में धारण किये वृषभेति वृषभ अर्थात् बैल पर सवार रुद्रदैवत्यां रुद्रहीहै देव जिसका यजुर्वेदेति यजुर्वेद को प्रकाश करतीहुई भूर्लोकेति भूर्लोकाभिमानिनी देवता, ऐसे गुणों से युक्त सावित्रीति सावित्री देवी को मैं ध्यान करताहूं ॥

---

* खट्वाङ्ग—खट्वा जो चारपाई पर्य्यङ्क उसका एक अंग अर्थात् इसप्रकार का शस्त्र जिसमें चारपाई का एक पावा और एकपाटी के समानहो ॥

वृद्धां वृद्धादित्यमण्डलमध्यस्थां श्यामवर्णां श्यामाम्बरानुलेपनस्रगाभरणामेकवक्त्रां द्विनेत्रां शङ्खचक्रगदापद्माङ्कचतुर्भुजां गरुडासनारूढां विष्णुदेवत्यां सामवेदमुदाहरन्तीं स्वर्लोकाधिष्ठात्रीं सरस्वतींनामदेवतां ध्यायामि ।

टी०—वृद्धां वृद्धअवस्था से युक्त वृद्धादित्येति वृद्ध आदित्य अर्थात् सायंकाल के सूर्य में स्थित श्यामवर्णां श्यामवर्ण शरीर श्यामाम्बरेति श्याम ही वर्ण वस्त्र, चन्दन, माला औ आभूषणों को धारणकिये एकवक्त्रां एकमस्तकवाली द्विनेत्रां दोनेत्रवाली शङ्खेति शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म को चारों भुजाओं में धारण किये गरुडेति गरुडपर सवार विष्णुदैवत्यां विष्णु ही है देव जिसका सामवेदेति सामवेद को प्रकाश करती हुई स्वर्लोकाधिष्ठात्रीं स्वर्लोकाभिमानिनी देवता, ऐसे गुणों से युक्त सरस्वतीति सरस्वती देवी को मैं ध्यान करताहूं ॥

अथ

गा०शापविमोचनम०

ब्रह्मशापविमोचनमन्त्रार्थः—

ॐ वेदान्तनाथाय विद्महे। हिरण्यगर्भाय धीमहि। तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्॥

टी०—वेदान्तनाथाय वेदान्तनाथ अर्थात् वेदान्तशास्त्र के स्वामी श्री ब्रह्मदेव जिन ने व्यास अवतार धारणकर वेदान्तशास्त्र को प्रकट किया, अथवा जो वेदान्त द्वारा जानेजातेहैं, अथवा जब असुरादि काल पाकर वेद वेदान्तादि को भ्रष्ट करने की चेष्टा करतेहैं, तब २ अवतार धारणकर वेद वेदान्त की रक्षा करते हैं इसकारण वेदान्तनाथ कहलातेहैं सो ऐसे ब्रह्मदेव को विद्महे हमलोग अपने बोध द्वारा अनुभव करतेहैं औ हिरण्यगर्भाय धीमहि ऐसे हिरण्यगर्भ रूप ब्रह्म को हमलोग ध्यानकरतेहैं, हिरण्यगर्भ उसे कहतेहैं जो सृष्टि का बीजरूप है जिस से सम्पूर्णब्रह्माण्ड प्रगट होताहै औ प्रलयकाल में सम्पूर्ण स्थूल रचना अपने संस्कार को लियेहुए जिस सूक्ष्म शक्ति में प्रवेश कर-

जातीहै, फिर ब्रह्मा को भी हिरण्यगर्भ इसकारण कहते हैं कि वह स्वर्ण के अण्डे से प्रकट हुएहैं। तन्नःब्रह्म सो ऐसे ब्रह्मदेव हमलोगों को प्रचोदयात् प्रेरणा करें अर्थात् हमलोगों पर कृपाकर हमारे मन को अपनी ओर खींचें अथवा हमारी बुद्धि को प्रेरणाकर काम क्रोधादि अशुभ कार्य्यों से हटाकर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की ओर लगावें ॥

वशिष्ठशापविमोचनमन्त्रार्थः—

ॐ सोऽहमर्कमयं ज्योतिरात्मज्योतिरहं शिवः। आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्व ज्योती रसोस्म्यहम् ॥

टी०—अर्कमयं ज्योतिः किरणसमूह से युक्त जो ज्योति अर्थात् सूर्य में जो प्रकाश वह मैं हूं औ आत्मज्योतिः प्राणिमात्र में जो आत्मप्रकाश वह मैं हूं शिवः परममंगलरूप भी मैंहीं हूं और वह जो आत्मज्योतिरहं आत्मज्योति मैं सो शुक्रः अग्निरूप, अथवा रसरूप भी हूं। कोई २ शुक्रः के स्थान में शुक्लः पाठकरतेहैं सो यदि शुक्लः पाठ होवे तो शुक्ल * जो

शुक्ल ॐकार का नाम है देखो पृष्ठ ३९ ४५ ॥

प्रणव ॐकार सम्पूर्ण सृष्टि का कारण वह भी मैं हीहूं औ सर्वज्योतिः चन्द्र, सूर्य अग्नि, हीरा, लाल, जवाहिर मणि, माणिक इत्यादि में जो ज्योति वह मैं ही हूं औ रसोऽस्म्यहं रस रूप भी मैं ही हूं अर्थात् भिन्न २ अन्नों में जो मधुर, तिक्त इत्यादि षट्रस अथवा शृङ्गार वीर इत्यादि नवरस सो भी मैं ही हूं अथवा जलाधिष्ठातृ देव भी मैं ही हूं ॥

विश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रार्थः—

गायत्रीं भजाम्यग्निमुखीं विश्वगर्भां यदुद्भवाः । देवाश्चक्रिरे विश्वसृष्टिं तां कल्याणीमिष्टकरीं प्रपद्ये ॥ 'यन्मुखान्निः सृतोऽखिल वेदगर्भः' ॥

टी—अग्निमुखीं अग्नि के समान प्रकाशित है मुख जिसका अथवा अग्नि है मुख में जिसके अथवा अग्नि है आगे में जिसके तात्पर्य यह कि जिसके सन्मुख जाने से जन्म जन्मान्तर के पाप भस्म होजातेहैं औ विश्वगर्भां जो विश्वगर्भा है अर्थात सम्पूर्ण विश्व जिस से उत्पन्न होताहै औ यदुद्भवाः देवाः जिस से सब देवों ने उत्पन्न होकर विश्वसृष्टिं चक्रिरे सम्पूर्ण

सृष्टि की रचना की तांकल्याणीं तिस मङ्गलमयी कल्याण करनेवाली औ इष्टकरीं सर्व मनोकामना की पूर्ति करनेवाली गायत्री देवी के प्रपद्ये शरणागत हम लोग होतेहैं । यन्मुखादिति जिसके मुख से अखिल वेदगर्भ अर्थात् सम्पूर्ण 'ब्राह्मण' उत्पन्न हुआ ॥

अथ

जपनिवेदनमन्त्रार्थः

देवांगातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमन्देव यज्ञᳬस्वाहा वातेधाः ॥

टी०—गातुविदः नानाप्रकार के वैदिक वाक्यों से जो सिद्ध कियाजाताहै ऐसे यज्ञ के जाननेवाले हे देवाः देव गण ! गातुंवित्त्वा आपलोग यज्ञको लाभ करके गातुं अपने २ मार्ग को इत प्राप्तहोइये औ मनसस्पते देव हे देव प्रजापते इमम् यज्ञम् इस मेरे जपयज्ञ के फल को जो मैं ने सन्ध्या में कियाहै आपके हाथ में देताहूं आप वाते वायुरूप ब्रह्म में धाः स्थापन

करें तात्पर्य यह कि मैं ने जोकुछ गायत्री का जप किया है वह आपलोग स्वीकार करें ॥

अथ

दिग्देवतानमस्कारम्०

शु० यजुर्वेदमाध्यन्दिनशाखीयदिग्देवतानमस्कारमन्त्र का अर्थ अत्यन्त सुलभहै इसकारण इसके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है केवल श्लोकमात्र का अर्थ करदियाजाताहै ॥

एकचक्रो रथोयस्य दिव्यः कनकभूषितः ।
समे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तोदिवाकरः ॥

टी०—एकचक्रेति जिसका एकही चक्र (पहिये) का रथ अत्यन्त दिव्य स्वर्ण से अलंकृत है ऐसे सूर्यदेव हाथ में कमल को लिये मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥

ॐ गायत्र्यैनमः। ॐ सावित्र्यैनमः। ॐ सन्ध्यायैनमः। इत्यादि इत्यादि देखो वृ० सन्ध्याविधि पृ० १४८ (इनमन्त्रों का अर्थ स्पष्ट है)।

कृ० यजुर्वेदतैत्तिरीयसन्ध्यादिग्देवतानमस्कारमन्त्रार्थः—

ॐ नमः प्राच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नमो दक्षिणायै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्र० नमो नमः प्रतीच्यै दिशे याश्च

" प्र० " उदीच्यै "

" प्र० " ऊर्ध्वायै "

" प्र० " अधरायै "

" प्र० " अवान्तरायै "

" प्र० " गङ्गायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति ते मे प्रसन्नात्मानश्चिरं जीवितं वर्धयन्ति नमो गङ्गायमुनयोर्मुनिभ्यश्च नमो नमो गङ्गायमुनयोर्मुनिभ्यश्च नमः

टी०—नमःप्राच्याइति पूर्वदिशा में रहनेवाले जो

देव हैं उनकेलिये मेरा नमस्कार है । दक्षिणायाइति दक्षिण दिशा में निवास करनेवाले जो देवगण हैं उनके-लिये मेरा नमस्कार है । प्रतीच्याइति पश्चिमदिशा में रहनेवाले जो देववृन्द हैं उनकेलिये मेरा नमस्कार है । उदीच्याइति उत्तरदिशा में जो देवता हैं उनकेलिये मेरा नमस्कारहै ऊर्ध्वायाइति ऊपर मस्तक की ओर रहने-वाले देवसमूहों के लिये मेरा नमस्कार हैं। अधरायाइति नीचे अतल, वितल से लेकर पाताल तक के निवास-करनेवाले देवों को मेरा नमस्कार है अवान्तरायाइति ईशान इत्यादि चारों कोनों के निवासकरनेवाले देवों को मेरा नमस्कार है। मङ्गेति गंगा और यमुना के बीच निवासकरनेवाले जो प्रसन्नात्मा अर्थात् कल्याणमय परमानन्दमूर्ति देव हैं वे हमलोगों के लिये चिर-कालतक जीवित रहनेकी आयुदेवें और नमो मङ्गेति गङ्गा यमुना के मध्य जो मुनिलोग अपनी २ तपस्या औ समाधि में मग्न हैं उनकेलिये मेरा वारंवार नमस्कार है

ॐकामोऽकार्षीन्नमोनमः, तै.आ.प्र.१०अ.६१

ॐमन्युरकार्षीन्नमो,, तै. आ. प्र. १ अ. ६२

टी०—कामः*कामाभिमानी देव ने आकार्षीत् किया मैं ने नहीं किया इसकारण नमोनमः उनको मेरा बारं बार नमस्कार है ॥

मन्युः क्रोधाभिमानी देव ने अकार्षीत् किया मैं ने नहीं किया इसकारण इनके हेतु मेरा नमस्कार बारं बार है ॥

तात्पर्य यह कि काम, क्रोध की प्रेरणा ही से हमलोग नानाप्रकार के कर्मों को करडालतेहैं इसकारण इन दोनों को मेरा नमस्कार है कि ये दोनों हमलोगों पर कृपादृष्टि कर हमलोगों को दूषित कर्मों की ओर प्रेरणा नकरें। अथवा जो कोई दूषित कर्म हमलोगों से इनकी प्रेरणा द्वारा होगयाहो तो उसका फल हमलोगों को नहोकर इनही दोनों में जाकर लय होजावे, इसकारण इनको बारंबार मेरा नमस्कार है ॥

पृष्ठ २६० के मन्त्रों में नमः नमः जो दोवार है वह इस तात्पर्य से है कि एक पिछले मन्त्र के साथ और एक अगले मन्त्र के साथ लगायाजावे ॥

---

* कामः कर्ता नाहं कर्ता--श्रुति का वचन है।

हिरण्यकेशीय सन्ध्या दिग्देवतानमस्कारमन्त्रार्थः—

ॐ आवान्तरदिशाभ्योनमः के साथ निचलामन्त्र पढ़नाहोगा।

ॐ संस्रवन्तु दिशोमयी समागच्छन्तु सूनृताः सर्वकामा अभियन्तुनः प्रिया अभिश्रवन्तुनः प्रिया अभिवादये।

दिशः पूर्व, पश्चिम इत्यादि दशों दिशायें मयि मुझपर कृपाकर संस्रवन्तु कल्याण की वृष्टि करें औ सूनृताः मेरे परम प्रिय करनेवाले समागच्छन्तु दशों दिशा से मेरेपास आवें। औ नः हमलोगों को सर्वकामा सवमनोकामनायें अभियन्तु प्राप्त हों और नः हमलोगों के लिये प्रिया अभिस्रवन्तु आनन्द देनेवाली वस्तुओं की वर्षा होवे। प्रिया अभिवादये और हमलोग अपने परमहितकरनेवाले देव, देवी, दिशा, सूर्य, चन्द्र, ऋषि मुनि इत्यादि को वारंवार नमस्कार करतेहैं॥

अथप्रार्थनामन्त्रार्थः

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः

सरसिजासनसन्निविष्टः । केयूरवान्मकरकुण्डल-वान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंङ्खचक्रः ॥

टी०—सवित्रेति सूर्यमण्डल के मध्य में वर्तमान कमल के आसनपर बैठेहुए केयूरेति भुजा में केयूर अर्थात् बिजावठ कानों में मकराकृत कुण्डल, मस्तक पर किरीट, गले में हार अर्थात् गजमुक्ता इत्यादि की माला हिरण्मयेति हिरण्मय अर्थात् स्वर्णमय दिव्य तेजोमयशरीर, शङ्खचक्रादि आयुधों को धारण किये-हुए नारायणः नारायण सदाध्येयः सर्वदा ध्यान करने के योग्य हैं। ऐसे नारायणदेव से यही प्रार्थना है कि मेरी सन्ध्या सफल होवे ॥

ओं यां सदा सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च । सायं प्रातर्नमस्यन्ति सा मा सन्ध्या अभिरक्षत्वों नमः ॥

टी०—यां जिसको सदा सदैव सर्वेति सब जीव स्थावर जङ्गम सायमिति सायंकाल औ प्रातःकाल अर्थात् अहर्निश नमस्कार करतेहैं सासन्ध्या सो सन्ध्या

मा अभिरक्षतु मुझे रक्षाकरें । ॐनमः ऐसी सन्ध्या को मेरा नमस्कार है ॥

सन्ध्याविसर्जनम् ॰

(किस वेद वाले किस मंत्र से विसर्जन करेंगे बृहत्सन्ध्या में देखलेना)

ॐ उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां ० (इस मन्त्र का अर्थ निचले मन्त्र के अनुसारही है इसकारण निम्नलिखित मन्त्र का अर्थ देखो)

ॐ उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि । ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥ (तै. आ. प्र. १०. अ. ३६)

टी०—ब्राह्मणेभ्यः सन्ध्योपासन करनेवाले द्विजों से अभ्यनुज्ञाता आज्ञा पाकर देवि हे देवी गायत्री भूम्याम् पृथिवीमण्डल के ऊपर वर्तमान पर्वतमूर्धनि मेरुपर्वत के मूर्धा अर्थात मस्तक पर जाते विद्यमान उत्तमेशिखरे जो उत्तमशिखर स्वर्गलोक अथवा आदित्यलोक है तहां यथासुखंगच्छ सुखपूर्वक पधारिये ॥

कृ० य० हिरण्यकेशीयविसर्जनमन्त्रार्थः—

ॐ स्तुतो मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ती पवने द्विजाता । आयुः पृथिव्यां द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा प्रजातुं ब्रह्मलोकम् ॥ तै. आ. प्र. १० अ. ३६

टी०—वेदमाता चारों वेदों की जननी अर्थात् उत्पन्न करनेवाली द्विजाता द्विजों से अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों से उपासना कियेजाने योग्य वरदा उपासकों की मनोकामना को पूर्णकरनेवाली मयास्तुतः * मुझ से आराधिता पवने प्रचोदयन्ती पवित्रता में प्रेरणा करतीहुई अर्थात् पवित्र रहने के निमित्त सुबुद्धि प्रदान करतीहुई अथवा आकाशमार्गहोकर अपने स्थान ब्रह्मलोक वा आदित्यलोक को लौटने के समय वायु में पवित्रता को फैलातीहुई मह्यम् मेरेलिये पृथिव्यां इस पृथिवीपर आयुः कम से कम शतवर्ष का जीवन द्रविणं बहुतधन ब्रह्मवर्चसं औ ब्रह्मतेज दत्त्वा देकर ब्रह्मलोकम् ब्रह्मलोक को प्रयातुमिच्छतीति शेषः

---

* 'स्तुतः' को 'स्तुता' होनाचाहिये किन्तु छान्दस होनेके कारण 'स्तुतः रहगया ।

जाने की इच्छा करताहै। 'प्रयातुं'* पाठ होने से यह अर्थ योग्य है किन्तु पाठ में सर्वत्र 'प्रजातुं' देखा-जाताहै इसकारण 'प्रजातुं ब्रह्मलोकम्' का विशेषणहोगा तब ऐसा अर्थ होगा कि ब्रह्मलोक जो अतलादि नीचे के लोकों से औ भूरादि ऊपर के सप्तलोकों से अत्यन्त उत्कृष्ट होकर उत्पन्न हुआहै तहां जाइये ।

ॐ घृणिः सूर्य आदित्यो न प्रभा वात्यक्षरम् । मधु क्षरन्ति तद्रसम् । सत्यं वै तद्रसमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम् ॥ तै. आ. प्र. १०. अ. ३७.

टी०—आदित्यः विश्वप्रकाशक श्री भगवान-आदित्य लोकों के उपकारार्थ प्रभा न अपनी प्रभा अर्थात् गोलाकार प्रकाश के सदृश प्रतिदिन आकाश मार्ग में चलतेहैं, तात्पर्य यह कि आदित्यभगवान जब आकाश में चलतेहैं तब आगे २ उनकी प्रभा अर्थात् गोलाकार प्रकाश अरुणवर्ण होकर चलतीहै, तिसके पीछे आप उसी मार्ग होकर चलतेहैं । वह

* छान्दस होनेके कारण 'प्रजाते' के स्थान में 'प्रजातुं' हुआ है ॥

आदित्य कैसे हैं कि सूर्यः सम्पूर्ण संसार के प्रसव अर्थात् जन्म के कारण हैं, घृणिः दीप्यमान हैं औ अक्षरम् अव्यय अर्थात् नाशरहित हैं । तद्रसम् उक्त आदित्यदेव से वृष्टिद्वारा उत्पन्न जो मधु अत्यन्त स्वादिष्ट जल उसे नदियां प्राप्तकर भूमि में क्षरन्ति वहतीहैं तद्रसम् वह उनका रस अर्थात् वृष्टिद्वारा प्राप्त जल है निश्चय करके सत्यम् सत्य हैं अर्थात् परमाणु रूप से तीनों काल में वर्तमान हैं, न्यायशास्त्रवेत्ता इसको भलीभांति जानते हैं' । आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म० का अर्थ पृष्ठ ११० में देखलेना ॥

वषंट्ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । तै० सं० का० २ प्र० २ अ० १२

टी०—हे शिपिविष्ट ज्योतिर्मय अथवा यज्ञ-पुरुष विष्णो विष्णुभगवान ! आसः मैं जो यज्ञकर्ता यजमान देवताओं से प्रेरित होकर यज्ञ के आसन पर बैठते आपकेलिये वषट् यज्ञ के हविष्य को आकृणोमि प्रदानकरताहूं उस मेरे हवि के द्रव्य को जुषस्व आप

स्वीकार करें और सुष्टुतयः सुन्दर स्तुतियों से युक्त मेगिरः मेरी वाणी त्वा आप की वर्धन्तु वृद्धिकरें औ यूयं आप सदा सबकाल में स्वस्तिभिः सर्वप्रकार के कल्याण औ मंगल से नः सबलोगों की पान रक्षा करें ॥

(सन्ध्याविसर्जन के पश्चात् तैत्तिरीयशाखा वालों को नीचे लिखे मंत्र से 'द्युलोक' औ 'पृथिवीलोक' की स्तुति करनीचाहिये)

ॐ इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु । पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् । भूतं देवानामवमे अवोभिः । विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ (तै. ब्रा. का. २ प्र. ८ अ. ४)

टी०—'द्यौः पिता पृथिवी माता' इस श्रुति के वचनानुसार द्युलोक अर्थात् स्वर्गलोक को पिता औ पृथिवी को माता कहतेहैं इसलिये यहां इन दोनों की स्तुति करतेहैं कि—पितः हे पितः द्युलोक और मातः हे मातः पृथिवी वाम् आप दोनों के प्रति इह इस सन्ध्यादि कर्म में यत् जो वचन मैं उपब्रुवे उच्चारण

करताहूं इदं यह मेरावचन * द्यावापृथिवी हे द्युलोक औ पृथिवीलोक सत्यम्अस्तु सच होवे। वह वचन क्या है उसे कहतेहैं—अवोभिः हमारी रक्षा के साथ देवानां सब ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों की औ राजपुरुषों की अवमेभूतम् रक्षा करनेवाले आप दोनों होवें॥ और हम भी आपलोगों के अनुग्रह से वृजनम् तापवर्जित अर्थात् कष्ट के निवारण करनेवाली शक्ति को अथवा अन्नउत्पन्न करनेवाले क्षेत्रों को औ जीरदानुम् बहुत सुन्दर बीज के देनेवाले वा जीवन के देनेवाले इषम् अन्न को विद्याम लाभकरें॥ अर्थात् आप दोनों की कृपा से हमलोगों को पूर्ण बल औ अन्न प्राप्ति होवे॥

(ऋग्वेद वालों को विसर्जन के पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र से भद्रसम्पादन करनाहोताहै।

ॐ भद्रं नोऽअपिवातयमनः। ७-७-२-मं. १

टी०—नःमनः हे हमलोगों का मन तु भद्रं सर्वप्रकार के मंगल औ कल्याण की अपिवातय इच्छाकरतारह। अथवा हे अग्निदेव वा सूर्यदेव आप नःमनः हमलोगों के मनको भद्रं कल्याण की ओर

---

* यहां द्विवचन विभक्ति के स्थान में 'सुपांसुलुक्' इस पाणिनीय सूत्र से लुक् रूप आदेश हुआ है

टी०—सर्व हे सर्वात्मक परमेश्वर ते आपके रुद्ररूपेभ्यः रुद्ररूपको, शर्वेभ्यः * शर्व अवतार को, अघोरेभ्यः सत्त्वगुणप्रधान परमशान्ति औ सौम्यरूप को अथ और घोरेभ्यः रजोगुणप्रधान आप के उग्र पूज्य मूर्ति को और घोर घोरतरेभ्यः तमोगुणप्रधान महाकालरूप घोरघोरतर अर्थात् अत्यन्त भयङ्कर रूप को सर्वेभ्यः अर्थात् उक्त सबरूपों को नमः अस्तु नमस्कार होवे ॥

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । तै.आ.प्र.१० अ.१०

टी०—तत्पुरुषाय उस महेश्वर के तत्पुरुष नामक परम श्रेष्ठ मूर्ति को अथवा उस प्रसिद्ध पशुपति मूर्ति को विद्महे हमलोग जानतेहैं अर्थात् गुरु द्वारा आप के स्वरूप को प्राप्त करचुकेहैं सो एवम्प्रकार जानकर महादेवाय आप के महादेव रूप को धीमहि हमलोग ध्यानकरतेहैं तत्रुद्रः सो रुद्रदेव नः हमलोगों को प्रचोदयात् मोक्षसाधन की ओर प्रेरणाकरें ॥

* शर्व नामक एक महेश्वर का अवतार है जो नृसिंह भगवान के क्रोध को शान्तिकर संसार को बचाने के लिये हुआ था-शर्व एक विशेष पशु है जो सिंह से भी अधिक भयंकर औ बलवान होता है ॥

कृ० य० हिरण्यकेशीयसन्ध्यावाले उक्त मंत्र के साथ निम्नला मंत्र अधिक पढ़ें ॥

ॐ ब्रह्मलोकायनमः । विष्णुलोकायनमः । (देखो बृहत्सन्ध्याविधि पृ० १७९)

इस मंत्र का अर्थ अत्यन्त सुलभ औ स्पष्ट है इसकारण यहां नहीं लिखा ॥

—०—

अथ मृत्तिकावन्दनम्०

ॐ भूर्भुवः स्वः । ॐ स्वः भुवः भूः

इन तीनों महाव्याहृतियों का टीका पृ० ९६, ९७, में देखलेना ।

ॐस्योना पृथिवीभवानृक्षरानिवेशनी यच्छानः शर्मसप्रथः ॥ १-२-६

टी०—पृथिवी हे पृथिवि ! आप स्योनाभवं हमलोगों को सर्वप्रकार सुखदेनेवाली अथवा विभव की विस्तार करनेवाली होवें और आप जो अनृक्षरा कण्टकरहित औ निवेशनि सब प्राणियों के निवास करने को शुभ स्थान हैं सो आप सप्रथः विस्तारपूर्वक शर्म घरं अथवा शरण नः यच्छ हमलोगों को देवें ॥

(उन विशेष मन्त्रों का अर्थ जिनको भिन्न २ वेद औ शाखावाले अपनी सन्ध्या में अधिक पढ़तेहैं) ।

उस परममंगलरूप महेश्वर के, सद्योजात १. वामदेव २. अघोर ३. तत्पुरुष अथवा पशुपति ४. ईशान ५. ये पांच अवतारहैं इसकारण नीचे लिखे पांचों मन्त्रों से इन पांचोंकी स्तुतिकीजातीहै ॥ (तैत्तिरीयसन्ध्या वाले भस्मधारण के समय इन मन्त्रों को अधिक पढ़तेहैं)

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवे नातिभवे भवस्व माम् । भवोद्भवाय नमः ।

(तै० आ० प्र० १० अ० १७)

टी०—सद्योजातम् सद्योजात नामक महेश्वर के शरण में प्रपद्यामि मैं प्राप्त होताहूं तिस सद्योजाताय सद्योजात नामक परब्रह्म को नमो नमः मेरा बारंबार नमस्कार है । हे सद्योजात परमेश्वर ! आप भवे भवे जन्म २ में मां मुझको न भवस्व न प्रेरणा करें अर्थात् हे जन्मदाता परमेश्वर! आप मुझे बार २ जन्म देकर इस भवसागर का महाक्लेश न भोगावें किन्तु

अतिभवे इस असार संसार के महादुःख को जीत भवसागर से उद्धार होजाने में प्रेरणा करें अर्थात् तत्त्व-ज्ञान प्रदानकर मिथ्या संसार से मुक्त करें। भवो-द्भवाय आप ऐसे भवसागर उद्धारकरनेवाले को नमः मेरा नमस्कार है ॥

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।

टी०—वामदेवाय नमः उस महेश्वर के वामदेव अवतार को मेरा नमस्कार है। ज्येष्ठायनमः परम उत्कृष्ट सबों से ज्येष्ठ अर्थात ब्रह्मादि देवों से भी पूर्व जो रूप उसे मेरा नमस्कार है। श्रेष्ठायनमः उस जगदीश्वर के परम श्रेष्ठ रूप को मेरा नमस्कार है। अथवा 'प्राणोवाव ज्येष्ठश्चश्रेष्ठश्च' इस श्रुतिवचन के अनुसार जो महेश्वर सबों से प्रथम ज्येष्ठ औ श्रेष्ठ रूप जो प्राण सो प्राण होकर सब जीवों में व्यापरहाहै उस प्राणरूप महेश्वर को मेरा नमस्कार है। रुद्रायनमः

सब प्राणियों को उनके पापकर्मों के अनुसार रोलानेवाला जो रुद्ररूप महेश्वर उसे मेरा नमस्कार है कालायनमः महाप्रलय के समय संहार करनेवाले कालरूप महेश्वर को मेरा नमस्कार है। कलविकरणायनमः सुन्दरता, मनोहरता, औ प्रेम के विस्तार करनेवाले रूप को मेरा नमस्कार है बलविकरणायनमः बल के विस्तार करनेवाले रूप को मेरा नमस्कार है। बलायनमः परम समर्थरूप महेश्वर को मेरा नमस्कार है। बलप्रमथनायनमः शत्रुओं के बल को नाशकरनेवाले शत्रुघ्न रूप को मेरा नमस्कार है। सर्वभूतदमनायनमः सब भूतों के दमनकरनेवाले अर्थात् काम क्रोधादि के नाश करनेवाले गोविन्द रूप को मेरा नमस्कार है। मनोन्मनायनमः मन के विकार शान्तिकरनेवाले रूप को मेरा नमस्कार है॥ अथवा ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, काल, कलविकरण, बलविकरण इत्यादि उस महेश्वर के विग्रह विशेष पीठदेवताओं का नाम भी है इसकारण इन पीठदेवताओं को मेरा नमस्कार है॥

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यो नमस्तेअस्तु रुद्ररूपेभ्यः। तै० आ० प्र० १० अ० १९

टी०—सर्व हे सर्वात्मक परमेश्वर ने आपके रुद्ररूपेभ्यः रुद्ररूपों को, शर्वेभ्यः * शर्व अवतार को, अघोरेभ्यः सत्त्वगुणप्रधान परमशान्ति की मूर्तिरूप को अथ और घोरेभ्यः रजोगुणप्रधान आप के उग्र रूप मूर्ति को और घोर घोरतरेभ्यः तमोगुणप्रधान महाकालरूप घोरघोरतर अर्थात् अत्यन्त भयङ्कर रूप को सर्वेभ्यः अर्थात् उक्त सबरूपों को नमः अस्तु नमस्कार होवे ॥

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् । तै. आ. प्र. १० अ. १०

टी०—तत्पुरुषाय उस महेश्वर के तत्पुरुष नामक परम श्रेष्ठ मूर्ति को अथवा उस प्रसिद्ध पशुपति मूर्ति को विद्महे हमलोग जानतेहैं अर्थात् गुरु द्वारा आप के स्वरूप को प्राप्त करचुकेहैं सो एवम्प्रकार जानकर महादेवाय आप के महादेव रूप को धीमहि हमलोग ध्यानकरतेहैं तत् रुद्रः सो रुद्रदेव नः हमलोगों को प्रचोदयात् मोक्षसाधन की ओर प्रेरणाकरें ॥

---

* शर्व नामक एक महेश्वर का अवतार है जो नृसिंह भगवान् के रोष से कम्पित संसार को बचाने के लिये हुआ था—शर्व एक विचित्र पशु है जो सिंह से भी अधिक भयङ्कर और बलवान होता है ॥

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्व-भूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ।

टी०—सर्वविद्यानामीशानः सर्व वेद वेदाङ्ग षटशास्त्र, औ चौसठोंकला विद्या के कर्त्ता जो ईशानदेव, सर्वभूतानांईश्वरः सब जीवों के पालनकर्त्ता ब्रह्माधि-पतिः वेद के अधिपति अर्थात् प्रलयकाल में रक्षा-करनेवाले, औ ब्रह्मणःअधिपतिः हिरण्यगर्भ के अधिपति अर्थात् प्रलयकाल में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सूक्ष्मरूप से रखनेवाले ब्रह्मा विधाता सो सदाशिवः कल्याणकर अस्तु होवें ॥ (ॐ) मंत्र को सम्पुट करने के निमित्त है ॥ (उक्त पांचों मंत्र भस्मधारण के हैं)

ॐ अमृतमस्यमृतोपस्तरणमस्यमृताय त्वोपस्तृणामि ॥

(अथर्ववेदवाले इसी मन्त्र से आचमन करते हैं आचमन के प्रकरण में छूटजानेसे यहां लिखागया)

टी०—हे जल आप अमृतमसि अमृतरूप हैं औ अमृतोपस्तरणमसि अमृत के उपस्तरण अर्थात् बिछावन हैं तात्पर्य यह कि जहांतक आप की फैलाव है

वह मानों अमृत से भरीहुईहै सो त्वा ऐसे आप को अमृताय अमृत के लिये अर्थात् मोक्ष के निमित्त उपस्तृणामि मैं आचमनकर शरीर के अन्तर्गत फैलाताहूं ॥

सुस्रुपीस्तदंपसो दिवानक्तं च सुस्रुषीः ।
वरेण्यक्रतूरहमा देवीरवंसे हुवे ॥

टी—सस्रुपीः दूध, दही, घी, हवि, औ सोमादिरस रूप से देवताओं के समीप जानेवाली देवीः जलाभिमानिनी देवी को अहम् मैं अवसे अपनी रक्षा के लिये आहुवे आह्वानकरताहूं, तदपसः जो यज्ञों में सोमरस होकर यजमानों को स्वर्ग प्राप्त करानेवाली है च और जो दिवानक्तम् दिनरात गङ्गा यमुना में जलरूप होकर सस्रुपीः प्रवाह करनेवालीहैं, फिर वरेण्यक्रतूः उत्तम यज्ञ जिन से सिद्धहोतेहैं । क्योंकि 'ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि' इत्यादि मंत्रों द्वारा याज्ञीय वस्तुओं के ऊपर यदि जल न छींटाजावे तो यज्ञ की सब क्रियायें निष्फल होजावें ॥

ओजोऽसि सहोऽसि जो आवाहनमंत्र पृष्ठ २४९ में लिखआये हैं उसके पूर्व ही कहीं २

ऋग्वेदवाले औ कृ० य० तैत्तिरीय शाखावाले निचले मंत्रों को आवाहन के समय अधिक पढ़लेतेहैं इसकारण इनका अर्थ यहां करदियाजाताहै ॥

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्म संमितम् । गायत्रीं छन्दसां मातेदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥ यदह्ना-त्कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते । यद्रात्रियात्कुरुते पापं तद्रात्रियात्प्रतिमुच्यते ॥ सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति । अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोऽस्तु ते ।

टी०—वरदा सेवकों को अभीष्टफल को देनेवाली देवी गायत्र्याभिमानिनी देवी अक्षरम् नाशरहित संमि-तम् वेदान्तशास्त्र से सम्यक्प्रकार निरूपित अर्थात् वादानुवाद से निर्णीत जो परब्रह्म उसे सिद्धकरतीहुई आयातु आदित्यमण्डल से हमलोगों के हृदय में आवें, आप कैसी हैं कि छन्दसांमाता वेदों की जननी अर्थात् मा हैं ऐसी हमलोगों से उपासना कियेजाने योग्य गायत्री गायत्री देवी इदंब्रह्म वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म-तत्त्व को जुषस्व * अभ्यास करावें अर्थात् प्रीतिपूर्वक सेवन करावें यदह्ना से लेकर नमोस्तुते तक के अर्थ

* जुषस्व वैदिक प्रयोग होने के कारण पुरुषविपर्य्यास होगयाहै ।

स्पष्ट हैं ॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः । समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहा सति

(कहीं २ ऋग्वेदवाले भस्मधारण औ प्रातरुपस्थान में यह मन्त्र अधिकपढ़ते हैं)

टी०—हे वेदशास्त्रोक्त देवगण ! वः आपलोगों की आकूतिः हमसेवकों की रक्षाकरने में जो अभिलाषा सो समानी सवमिलकर एकसमान औ सरला होवे और वः हृदयानी आपलोगों का हृदय हमलोगोंपर समाना कोमलहोवें औ वः मनः आपलोगों का मन हमलोगोंपर समानम् सरलहोवे, औ यथा जैसे वः आप लोगों के हृदय, मन, सति सज्जनपुरुषों पर सुसहा सरल औ कोमल हैं वैसेही हमलोगों पर भी द्रवीभूत होवे ॥

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य । राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥

(ऋग्वेदवाले इसीमन्त्र से पुनरावाहन करतेहैं, आवाहन के प्रकरण में छूटजाने से यहां लिखागया)

टी०—प्रातः देवी अदितिम् प्रातः सन्ध्याभिमानिनी क्रीडादिगुण विशिष्ट अदिति नामसे प्रसिद्ध भगवती सन्ध्यादेवी की जोहवीमि में अत्यन्त प्रेम से उपासना करताहूं जिसने मध्यंदिने मध्याह्नकाल में सूर्यस्यउदिता सूर्य से उत्पन्न होकर मध्याह्नसन्ध्या ऐसा नाम पायाहै सो सन्ध्या तोकायतनयाय शिशुरूपपुत्रों के लिये शंयोः कल्याणं प्राप्त करावें अर्थात् हम बच्चों को कल्याणयुक्त करे, जिसकी कृपा से मित्रावरुणा मित्र औ वरुण नामक दोनों देवों से सर्वतातेळे सर्वज्ञान रूप वित्त औ राये प्रत्यक्ष धन रूप वित्त मुझे प्राप्तहो। वित्त दो प्रकार के हैं 'अन्तर' औ 'बाह्य' तत्त्वज्ञानादि को अन्तर्वित्त औ द्रव्य इत्यादि को बाह्यवित्त कहतेहैं ॥

तैत्तिरीयशाखावाले औ ऋग्वेदवाले दिग्देवतानमस्कार के समय

'ॐकामोऽकार्षीन्नमोनमः मन्युरकार्षीत् नमोनमः'

साथ निचला मंत्र अधिक पढ़तेहैं ॥

नर्य प्रजां मे गोपाय। अमृतत्वाय

जीवसे। जातां जनिष्यमाणां च अमृते सत्ये प्रतिष्ठिताम्।

टी०—जातां उत्पन्नहोगईहुई च औ जनिष्यमाणां उत्पन्न होनेवाली, अमृते मोक्षपद में औ सत्ये सत्य में प्रतिष्ठितां प्रतिष्ठिता अर्थात् मोक्ष पदवी औ सत्य पदार्थ के प्राप्तकरने के लिये अधिकारिणी मे नर्यप्रजां मेरी नरस्वभाववाली प्रजा को अर्थात् मेरे सहित मेरे पुत्र पौत्रादिकों को हे सन्ध्यादेवी तू गोपाय रक्षाकर तू कैसी है कि अमृतत्वाय प्राणियों को मोक्षपद प्रदान के लिये जीवसे* वर्तमान रहतीहै ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

टी०—देवाः हे इन्द्रादि देवगण ! यजत्राः हमलोग ब्रह्मयज्ञ के करनेवाले आपलोगों की कृपा द्वारा कर्णेभिः अपने कानों से सदा भद्रं मंगलही मंगल सुनें

---

* जीवसे—यहां अव्यय है।

और अक्षभिः नेत्रों से सदा भद्रं कल्याणमय वस्तुओं को अथवा आपलोगों की मंगलमयी मूर्तियों को पश्यम देखें और तनुभिः शरीर से और स्थिरैःअङ्गैः शरीर के दृढ़ अवयवों से देवहितं श्रीनरायण की प्रीती उत्पन्न करनेवाली तुष्टुवांसः स्तोत्रें से स्तुति करतेहुए यदायुः जो हमलोगों का आयु है उसे व्यशेम हमलोग विशेष करके प्राप्तकरें अर्थात् पूर्णआयुभर जीवितरहैं ॥

इतिमन्त्रप्रभाकरे द्वितीयाध्याये वैदिक-सन्ध्यामन्त्रार्थः

॥ समाप्तः ॥

सूचीपत्रम्

सन्ध्या के शेषसब मन्त्रों

का

सूचीपत्र

श्री ० स्वामी हंसस्वरूप जी की बनाई हुई पुस्तकों
का
सूचीपत्र ।

	नाम पुस्तक	मूल्य डाकव्ययसहित ।
१.	बृहत्सन्ध्याविधि—	१रु०
२.	मन्त्रप्रभाकर—	१॥०
३.	षट्चक्रनिरूपणचित्र—	२॥०
४.	षट्चक्रनिरूपणमूर्ति—	॥०
५.	षटचक्रनिरूपणपौराणिकसन्ध्यासहित	।=)
६.	प्राणायामविधि—	।=)
७.	बृहत्स्नानविधि—	=)
८.	प्रातःस्मरण—	–)
९.	प्राणायाममञ्जरी—	–)
१०.	अनाहतयन्त्र—	३)
११.	प्रेमगुब्बारा—	–)
१२.	यज्ञेश्वरविनोद—	=)

बाबूलाल शर्म्मा

पुस्तकाध्यक्ष
त्रिकुटीमहल सभा चन्दवारा
मूजफ्फरपुर (बिहार).